श्री अरविन्द कर्मधारा

मई - जून

श्रीअरविन्द कर्मधारा

श्रीअरविन्द आश्रम

दिल्ली शाखा का मुखपत्र

(मई - जून - 2023)

अंक - 3

सं स्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन

अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

सुश्री तारा जौहर, विजया भारती

ऑनलाइन पब्लिके शन ऑफ श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृ पया सब्सक्राइब करें-

saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय

श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा

श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाषः 26567863, 26524810

आश्रम वैबसाइट

(www.sriaurobindoashram.net)

"मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ। समृद्धि में या प्रतिकूल परिस्थितियों में मैं तुम्हें कभी नहीं छोडूंगी।यहाँ तक कि जब तुम डूबते हो, में तुम्हारे साथ हूँ–मैं तुम्हारे साथ डूबती हूँ। मैं किनारे पर खड़े रहकर दूर से केवल देखती नहीं। मैं तुम्हारे साथ डूबती हूँ, मैं तुम्हारे अंदर हूँ: क्योंकि मैं तुम हूँ (आइ एम यू)। "

... श्रीमां

प्रियपाठकों,

श्री अरविंद कर्मधारा का नया अंक आपके सामने ला रही हूं , जब भी इस पत्रिका का नया अंक तैयार होता है, इसके माध्यम से श्रीमां और श्री अरविंद के जीवन दर्शन का जो रूप सामने पाता है,उससे जीवन के सच्चे और सुंदर स्वरूप ,और उसके उच्चतर लक्ष्य के प्रति मन में सवाल ही नहीं उठते, बल्कि एक आंतरिक प्रेरणा के रूप में उनके जवाबों के रास्ते भी श्री मां एवं श्री अरविंद के कथनों और लेखों के माध्यम से सामने आ जाते हैं । जीवन क्यों के साथ ही, मृत्यु क्यों और कैसे आदि प्रश्नों का उत्तर देते हुए उनके कथन हमारे सामने रास्ता दिखाने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं । श्री अरविंद के द्वारा उद्घोषित रूपांतर का पथ प्रदर्शन करने वाला 'पूर्णयोग' जीवन को समग्रता से जीना सिखाता है। जिसने भी श्री अरविंद और श्रीमां के मार्गदर्शन को स्वीकार करते हुए उनके प्रति पूर्ण समर्पण भाव से अपना जीवन देने का अटल निर्णय किया है, उनके लिए जीवन का लक्ष्य सहज ही स्पष्ट और बोधगम्य बन उठता है । इस दृष्टि से अरविंद आश्रम पांडिचेरी में श्रीमां के सानिध्य में रहने वाले साधकों की जीवन शैली हमारे लिए जीवंत उदाहरण बन जाती है। श्री अरविंद को अपना जीवन समर्पित करना यदि जीवन का लक्ष्य बना लिया जाए और उसकी प्राप्ति के लिए अटल दृढ़ता के साथ प्रयासरत रहें तो निश्चित रूप से श्रीमां और श्री अरविंद की सहायता प्राप्त होती है, ऐसा इन साधकों का जीवन प्रमाणित करता है। इनके लिए क्या जीवन और क्या मृत्यु ! दोनों ही दिव्यता के पथ पर क्रियाशील एक लीला का स्वरूप मात्र हो जाते हैं, जिसका उद्देश्य श्री अरविंद के योग पथ पर चलना और उसको अपने जीवन में उतार लेना मात्र है। सुश्री प्रीति दासगुप्ता की पुस्तक से उनका एक संस्मरण साझा करती हूं, जो हमारे लिए इस बात का अनुपम- अनुकरणीय उदाहरण होगा कि यदि अपने जीवन को पूर्ण समग्रता से चैत्य के इर्द-गिर्द अपनी सम्पूर्ण सत्ता के एकत्वीकरण द्वारा श्री अरविंद के प्रति समर्पित कर दिया जाए ,तो यह समर्पण उसे एक आदर्श योगिक जीवन के रूप में रूपांतरित कर देगा इसमें कोई संदेह नहीं-----, प्रीति दी लिखती हैं....

सन् १९६१ कुछ दिनों से देख रही हूँ कि प्लेग्राउण्ड से आकर पिताजी ध्यानघर में ध्यानमग्न बैठे हैं । जहां अभी श्रीअरविन्द की कांसे की मूर्ति रखी है उस स्थान पर वे बहुत देर तक बैठे रहते थे...।

पिताजी मेडिटेशन हॉल में बैठने के पश्चात् समाधि पर जो माथा टेककर बैठते थे तो उठने का नाम ही नहीं। मेरे मन में उनके लिये चिंता होने लगती। कभी- कभी उन्हें समाधि पर से उठाकर लाना होता था। "बहुत रात हो गयी है घर नहीं जायेंगे ?" वे धीर शांत भाव से समाधि से उठकर आते थे। घर की ओर जाते हुए रास्ते में अनेक अनुभूतियां सुनाते थे।

पिताजी घर में कभी-कभी कहते थे, "यह शरीर अब बूढ़ा हो गया है, इसको छोड़ देना होगा।" उनकी छाती में प्रायः ही दर्द होता था, यह बात उन्होंने कभी हमें बतायी नहीं।

उस दिन २१ मई का दिन था। शाम को मैं काम में कुछ व्यस्त थी । ताप्ती (छोटी बहन) अचानक आकर बोली, "दीदी, पिताजी बहुत अस्वस्थ हो गये हैं।" जल्दी से जाकर उनके कमरे में देखा, वे जमीन पर बैठे थे। कुर्सी पर मां की फोटो रखकर दोनों हाथों से उसे पकड़ कर अपना माथा प्रणाम की भंगिमा में फोटो पर रखा हुआ था। झर-झर पसीना बह रहा था। छू कर देखा उनका शरीर बर्फ जैसा ठंडा था मैं दौड़ कर आश्रम गयी, वसुधाबेन से कहा, "मां

से कहो पिताजी बहुत अस्वस्थ हैं।" जैसे ही वसुधाबेन ने कमरे में जाकर मां से कहा, मां ने तुरंत डॉ० सान्याल को पिताजी को देख आने को कहा। मैं ऊपर तिमजिले की सीढ़ी पर ही खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी। सान्याल-दा के साथ घर आकर देखती हूँ तो पिताजी बरामदे में चारपाई के ऊपर प्रसन्नचित बैठे हैं। सान्याल दा के साथ हंसी-मजाक भी किया। सान्याल दा निश्चिंत होकर चले गये।

पिताजी जैसे कुछ सोच रहे हैं, बहुत गंभीर हैं। हम उनके पास बैठे हैं। थोड़ी देर बाद बोले, "आरती (छोटी बहन) का जन्मदिन कल २२ मई को है। मैं उसके जन्मदिन पर नहीं जाऊंगा। उसके जन्मदिन तक मैं ठहरूंगा ही।" मनोज की तरफ देखकर बोले, "तुम इस घर में ताप्ती के साथ रहोगे।" इस ढंग से बातें की कि हम लोग चौंक गये। "आप ऐसा क्यों कह रहे हैं? हमें छोड़कर कहाँ जायेंगे ?" मैंने कहा। पिताजी चुपचाप बैठे रहे ऐसा लगा जैसे कुछ सोच रहे हैं। जैसे-जैसे रात गंभीर होने लगी छाती का दर्द भी बढ़ने लगा । सान्याल-दा बार- बार आकर इंजेक्शन देने लगे। अगले दिन २२ मई थी। दर्द थोड़ा भी कम नहीं हो रहा था। इतनी तीव्र व्यथा में भी आरती का जन्मदिन याद था। बार-बार पूछ रहे थे "मानू (आरती) मां के पास से अभी तक लोटकर नहीं आयी ?" कैसा एक अस्थिर-सा भाव था। उस शाम को मां के सब कार्य बहुत देर से समाप्त हुए। आरती घर शाम को प्रायः छः बजे लौटकर आयी। उसे देखते ही पिताजी एक बार स्वस्थ हो उठे, आकर कुर्सी पर बैठ गये। "मानू, पास आ ।" आरती को चिपटा लिया। विस्तार से जन्मदिन के बारे में अनेकों बातें पूछीं, मां की बात बार-बार पूछते रहे।

तत्पश्चात् बिस्तर पर लेटते ही मानों वे दूसरे व्यक्ति थे, दर्द बढ़ गया, असह्य कष्ट था। देखा नहीं जा रहा था। मानों मां के पास से आरती के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। मृत्यु के साथ युद्ध चल रहा था। छाती का दर्द बढ़ गया। पिताजी ने इशारे से कागज के कुछ टुकड़े मांगे। मुंह से रक्त आ रहा था। हम जान न सके इस प्रकार थूक को कागज में लपेटकर एक बर्तन में रख रहे थे। हमारी तरफ देख भी नहीं रहे थे। आश्चर्य गंभीर रात्रि हम भाई-बहनों को इशारे से सोने के लिये कहा। बत्ती बुझाकर मैं उनकी पीठ पर हाथ फिराने लगी। मां को पुकार रही थी... आंखों से अश्रु स्वतः झर रहे थे। पिताजी अचानक जोर से बोल उठे "रोगी के कमरे में शांत होकर बैठना चाहिये, वातावरण खराब न करो।" मैं तो जोर से रोयी नहीं थी उन्हें कैसे पता लगा !!२२ मई की रात से उनकी अवस्था बहुत खराब हो गयी । २३ मई की प्रातः मनोज ने जाकर मां को उनकी अवस्था बतायी तो मां बोली, "अपने पिताजी से कहना यदि वे इसी शरीर में रहना चाहते हैं तो उनको कष्ट सहना ही होगा।" मां ने मनोज के हाथ में उनके लिये आशीर्वाद पुष्प दिया। मनोज ने घर आकर मां ने जो कहा था वह सब पिताजी को बताया। मां के आशीर्वाद को पहले पिताजी के सिर से छुआ कर फिर उनकी छाती पर रख दिया। उनके चेहरे पर एक रहस्यमयी हंसी फूट पड़ी। उसके बाद ही दर्द बहुत बढ़ गया। मनोज पिताजी को चिपटाये हुए है। उन्होंने अंतिम श्वास लिया। मां की फोटो और आशीर्वाद उनकी छाती र रखाथा।

हम पिताजी की ओर देखते हुए चुपचाप बैठे हैं। क्या घट गया है कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उनकी मृत्यु का समाचार आश्रम में फैल गया। रंजू-दा (नलिनी दा के सुपुत्र) ने आकर कहा, "पिताजी (नलिनी-दा) ने तुम लोगों को अभी आश्रम जाने को कहा है, मां तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं। पिताजी के कमरे के पास जो दरवाजा है वे वहां तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जल्दी चलो।" हम अवाक् होकर देख रहे हैं। पिताजी को इस प्रकार इसी क्षण छोड़कर कैसे जा सकते हैं! सोच रही हूं।

रंजू-दा समझ गये, बोले, "तुम चिंता मत करो, हम लोग यहां हैं।" देखती हूं बरामदे में और बाहर आंगन में बहुत से आश्रमवासी शांत भाव से खड़े हैं। हम आश्रम चले गये। नलिनी दा हम लोगों के लिये प्रतीक्षा कर रहे थे। हमारी तरफ देखकर स्नेहसिक्त स्वर में बोले, "ऊपर चले जाओ। मेडिटेशन हॉल में मां तुम्हारे लिये प्रतीक्षा कर रही हैं।" ऊपर जाकर देखते हैं-मां बैठी हैं उसी कुर्सी पर जिस पर ५ दिसम्बर के दिन मां आकर बैठती थीं। अब भी वह कुर्सी उसी स्थान पर रखी है। ५ दिसम्बर को सवेरे दस से साढ़े दस बजे तक सब मिलकर इसी कुर्सी के सामने बैठकर ध्यान करते हैं।

हम कमरे में जाकर मां के पास बैठ गये। हमारी ओर देखकर मां बोली, "यहां से जाकर तुम अपने पिताजी की चारपाई के पास बैठना, एक घंटा ध्यान करना।" मेरी तरफ देखकर बोलीं, "रोना नहीं। एक घंटा अवश्य ध्यान करना। फूलों के लिये मत सोचना। मैं नलिनी, अमृत और पवित्र को फूल दे दूंगी। वे भी तुम्हारे साथ ध्यान करेंगे।" हम मां को प्रणाम करके आकर पिताजी की चारपाई के पास बैठ गये। ध्यान आरंभ हो गया। किंतु यह क्या! मैं तो केवल पिताजी को देख रही हूं। वही प्रसन्न चमकता हुआ चेहरा। सिल्क का कुर्ता पहने थे जैसा कि किन्हीं विशेष अवसरों पर जाने के लिये पहनते थे गले में सिल्क की चादर डाली हुई थी। झलमल सुंदर चेहरा। वे अपने शरीर से कुछ ऊपर बैठे हैं और हम सबको नाम लेकर बुला रहे हैं। चेहरा बहुत ही सुंदर है। ध्यान तो मुझसे हुआ नहीं केवल जी भरकर पिताजी को देख रही हूँ।

ध्यान के पश्चात् मीनू मुझसे बोली, "मैं समाधि पर प्रणाम कर रही थी, देखती हूँ समाधि 'सेवा' वृक्ष (मां का दिया हुआ फूल का नाम) के फूलों से ढकी है। फूलों ने मौसाजी (श्री नरेन्द्र दासगुप्त) के शरीर का आकार लेकर धीरे-धीरे ऊपर उठना शुरू किया। यह अलौकिक दर्शन करने के पश्चात् मैं जल्दी से यहां आयी। आकर देखा मौसाजी सचमुच ही प्रयाण कर गये हैं।"

हम २४ मई को फिर मां के पास गये। मां ऊपर मेडिटेशन हॉल में कुर्सी पर बैठी हमारी प्रतीक्षा कर रही थीं। जैसे ही हम मां को घेर कर बैठे कि मां मृत्यु के बारे में बहुत-सी बातें कहने लगीं। मां अपना हाथ छूकर बार-बार कहने लगीं, "यह शरीर कुछ नहीं है। एक साड़ी पुरानी हो जाने से जैसे हम उसको बदल कर और एक नयी साड़ी पहन लेते हैं, इसी प्रकार शरीर में जब वार्धक्य और बुढ़ापा आ जाता है, तब हम यह शरीर छोड़कर नया शरीर धारण कर लेते हैं। यह ऐसा ही है जैसे एक कमरे से दूसरे कमरे में जाना।" यह बात कहते-कहते मां अचानक बोली, "ये लो, इधर इस कोने में, दर्शन के कमरे के पास तुम्हारे पिताजी प्रसन्न मुद्रा में खड़े हैं। तुम्हें कह रहे हैं- "मैं बहुत आनंद में हूं। इस पार आना कुछ भी कठिन नहीं है, बहुत सहज है। बहुत आनंद में हूं मैं।" हमने पीछे मुड़कर उस कोने की ओर देखा पर हम पिताजी को नहीं देख पाये।

पिताजी के देहान्त के पश्चात् मां ने हमें एक घंटा ध्यान करने को क्यों कहा था, इस बात से मेरे मन में कुछ अशांति थी। कहीं ऐसा तो नहीं कि मृत्यूपरांत उनके साथ कुछ अघटन घटना घटनेवाली हो। इस कारण मां से पूछा, "मां आपने हमारे पिताजी के देहान्त होते ही हमें क्यों बुलाया था और क्यों एक घंटा ध्यान करने को कहा था ?" मां बोलीं, "मैंने तुम्हें अपने पिताजी की चारपाई के पास बैठकर एक घंटा ध्यान करने को कहा था, इसका कारण यह है कि

.... मैंने इस समय में उनके लिये श्राद्ध किया था।

मुझे विशेष सांत्वना नहीं मिली। पिताजी के बारे में मेरे मन में अभी भी दुश्चिंता थी। मां ने अचानक मुझसे पूछा, "ध्यान के समय तुमने कुछ देखा नहीं ?"
मैंने कहा, "मैंने देखा - पिताजी अपने शरीर से कुछ ऊपर बैठे हैं, चमकता हुआ प्रसन्न बदन है। वे हम सबका नाम लेकर बुला रहे हैं। फिर वे धीरे-धीरे ऊपर उठने लगे।"

मां बोलीं, "ठीक देखा है। मृत्यु के पश्चात् उनकी सत्ता का सब कुछ ऊपर उठ गया था किंतु पितृस्नेह ने उनको सूत की डोरी की तरह अटका रखा था। मेरे बच्चों का क्या होगा ? वे मेरे बिना कैसे रहेंगे? इस दुश्चिंता ने उनको अटका रखा था। इसलिये मैंने उनका श्राद्ध करके उनको पितृस्नेह के बंधन से पूरी तरह मुक्त करने की व्यवस्था कर दी। तुम्हारे पिता अब मनुष्य रूप में जन्म नहीं लेंगे। सीधे अतिमानसिक व्यक्ति के रूप में पृथ्वी पर आयेंगे।"

पिताजी अतिमानसिक व्यक्ति के रूप में पृथ्वी पर आयेंगे, मां के ऐसा कहते ही हम आनंद से चहक उठे। हमारी आनंद ध्वनि सुनकर चम्पकलाल जी दौड़कर आकर दरवाजे के पास खड़े हो गये। उनके चेहरे पर भी प्रसन्नता थी। मीनू ने पिताजी की मृत्यु के पश्चात् जो अंतर्दर्शन देखा था वह भी मैंने माँ को सुनाया।

सब सुनकर मां बोलीं, "मीनू ने ठीक ही देखा है। तुम्हारे पिता ने अपना संपूर्ण जीवन श्रीअरविन्द की सेवा करने, उनको समर्पण करने के उद्देश्य से व्यतीत किया है, उन्होंने अपनी सत्ता का प्रत्येक अंश चैत्य सत्ता को केन्द्र करके उसके चारों और गठित किया था। वे बहुत सचेतन व्यक्ति थे। मैंने उन्हें सीधा ऊपर उठते देखा है। अपनी सत्ता के प्रत्येक भाग को एकत्रित करके, जहां श्रीअरविन्द कार्य कर रहे हैं, वे वहां चले गये।"

मां ने मृत्यु के बारे में सत्प्रेम से बहुत बातें कही हैं। बातचीत के प्रसंग में मां ने पिताजी की मृत्यु की घटना सत्प्रेम से विस्तार से कही। वह मैं यहां लिख रही हूँ । यदि व्यक्ति सचेतन भाव से जीवन व्यतीत करे तो उसकी आत्मा की सद्गति होती है। पिताजी का जीवन देखने से इसका प्रमाण मिलता है। मां ने कहा-

"नरेन्द्रनाथ का उदाहरण लो एक ऐसा व्यक्ति जिसने सारी आयु श्रीअरविन्द की सेवा करने के विचार से बितायी, मरते समय मेरी फोटो अपनी छाती से चिपकाये था। बहुत सचेतन और एकनिष्ठ आत्मदान वाला उसकी सत्ता के सब भाग उसके चैत्य के गिर्द भली प्रकार गठित थे। वह एक समर्पित व्यक्ति था। जिस दिन वह देह त्याग करने को था उस दिन मीनू समाधि के पास ध्यान कर रही थी। उसे अचानक एक अंतदर्शन हुआ। उसने देखा कि समाधि के साथ लगे 'सेवा' वृक्ष के जो फूल समाधि पर हैं वे सब इकट्ठे होकर ऊपर और ऊपर उठने लगे और उसके अंतर्दर्शन में उन फूलों ने नरेन्द्रनाथ का आकार लिया। यह जल्दी से उसके घर आयी और तबतक उसका देहान्त हो चुका था।

मुझे उसके अंतर्दर्शन के बारे में बाद में पता चला। परंतु जब उसने शरीर छोड़ा मैंने उसकी सारी सत्ता को एक साथ एकत्रित, गठित और पूरी तरह समरूप होकर बहुत तीव्र अभीप्सा के साथ ऊपर और ऊपर उठते देखा, बिलकुल भी इधर-उधर नहीं, सीधा उस लोक में जाते देखा जिसे श्रीअरविन्द ने उत्तरार्द्ध कहा है और जहां से श्रीअरविन्द अपनी

अतिमानसिक क्रिया द्वारा धरती का कार्य संचालन करते हैं। और वह उस ज्योति में विलीन हो गया। दिल का दौरा पड़ने से कुछ देर पहले वह अपने बच्चों से कह रहा था-वस्त्र जीर्ण हो गया है अब इसे छोड़ देना होगा।"

(अविस्मरणीय वे क्षण - प्रीति दासगुप्ता, अनु. ज्ञानवती गुप्ता, पृ. ४३-४७)

उपरोक्त संस्मरण के साथ स्वतः ही अंतः प्रेरणा उठती है कि हम सब भी श्री अरविन्द के 150वें जन्मोत्सव के इस पावन वर्ष बेला में जीवन के उच्चतम लक्ष्य के प्रति समर्पित होने की प्रतिज्ञा करें।इसी प्रार्थना और शुभेच्छा के साथ...,

अपर्णा दी की सम्पादकीय में
इस माह पत्रिका के प्रकाशन में कुछ विलंब होने का खेद है।

हार्दिक शुभेच्छा सहित

अपर्णा

विषय-सूचि

- अलीपुर बम केस और श्री अरविन्द 10
- इक्कीसवीं सदी का भारत और श्रीअरविन्द्र 13
- इक्कीसवीं सदी का भारत और श्रीअरविन्द्र 17
- गीता और आदर्श समाज 20
- धन 23
- पूर्णयोग 24
- प्रार्थना और ध्यान 27
- ब्रह्मजाया या ब्रह्म की वधू 28
- माता की शक्ति 32
- मातृ-शक्ति के दिव्य स्पर्श से 32
- योग का मार्ग 32
- वर्तमान मानवीय समस्याएं और श्रीअरविंद का गीता- प्रबंध ज्ञानचंद्र 33
- श्रीअरविन्द का प्रतीक 34
- सुनो वत्स, सुनो... 35
- युवाओं से : श्रीमां के प्रेम के साथ 35
- अपना आध्यात्मिक वातावरण स्वयं बनाओ 36
- जब हम उतावली में हों तो अच्छे से अच्छा कैसे कर सकते हैं? 36
- एकाग्रता क्या है? 37
- स्वर्णिम ज्योति 38
- आश्रम गतिविधियाँ 39

अलीपुर बम केस और श्री अरविन्द

-सुरेश चन्द्र त्यागी

कलकत्ता का मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड अपने क्रूर निर्णयों के लिये राष्ट्रभक्तों में पहले ही बदनाम था पर 'संध्या' के सम्पादक ब्रह्माबान्धव उपाध्याय को राजद्रोही ठहराकर सजा देने तथा कैंपबेल अस्पताल में उनकी मृत्यु से क्रांतिकारियों का रक्त खौल उठा। इसके बाद कलकत्ता के एक लड़के सुशील सेन को 'वन्देमातरम्' शब्द का उच्चारण करने या ऐसे ही किसी अभियोग में किंग्सफोर्ड ने अदालत में सरेआम कोडों से पीटने की सजा दी तो युवक राष्ट्रवादियों की क्रांति भावना शान्त नहीं रह सकी। इसी बीच किंग्सफोर्ड का तबादला मुजफ्फरपुर हो गया और वह वहाँ जिला जज होकर चला गया। उग्रपंथी नवयुवकों ने तय किया कि मुजफ्फरपुर जाकर ही किंग्सफोर्ड की हत्या की जानी चाहिये। यह काम खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी को सौंपा गया। इन दोनों ने 30 अप्रैल, 1908 को मुजफ्फरपुर में एक घोड़ागाड़ी पर यह समझकर बम फेंके कि उसमें किंग्सफोर्ड बैठा हुआ है पर यह अनुमान गलत निकला और श्रीमती कैनेडी तथा उनकी पुत्री की हत्या हो गई जो दोनों ही निर्दोष और किसी भी तरह की राजनीति से अनभिज्ञ थीं। 'वन्देमातरम् के सम्पादकीय में भी इस प्रकार निर्दोष व्यक्तियों की हत्या को परम्परा और संस्कृति विरुध्द कहा गया और ऐसे कृत्यों की निन्दा की गई। मुजफ्फरपुर की यह घटना राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में अपने ढंग की अकेली ही है। खुदीराम बोस को फांसी दी गई थी और प्रफुल्ल चाकी अन्य क्रांतिकारी साथियों का भेद खुलने के भय से स्वयं शहीद हो गये थे।

इस घटना से अंग्रेज सरकार बौखला गई। जगह-जगह छापे मारे गये। सरकार ने सोचा कि सारे षड्यंत्रों के पीछे 'भारत के सबसे खतरनाक व्यक्ति' श्रीअरविन्द का मस्तिष्क ही कार्य करता है। 12 मई को पुलिस ने मानिकटोला बागान में बम बनाने के एक छोटे कारखाने पर छापा मारा और बारीन्द कुमार घोष को अनेक साथियों सहित पकड़ लिया गया। 4 मई को प्रात: श्री अरविन्द को भी गिरफ्तार कर लिया गया। श्रीअरविन्द ने 'कारा काहनी' में अपनी गिरफ्तारी का स्वयं वर्णन करते हुए लिखा है कि "सवेरे लगभग पांच बजे मेरी बहन बड़ी घबराई हुई मेरे कमरे में घुसी और मेरा नाम लेकर मुझे पुकारा। मैं जाग उठा। दूसरे ही क्षण छोटा सा कमरा सशस्त्र पुलिस से भर गया। सुपरिन्टेन्डेन्ट क्रेगन, चौबीस परगना के क्लार्क साहब सुपरिचित श्रीमान कुमार गुप्त की लावण्यमय और आनन्ददायक मूर्ति और अन्य भी कई इन्सपैक्टर, लाल पगड़ीधारी, जासूस और खानातलाशी के साक्षी। हाथ में पिस्तौल लिये, वीरता के गर्व से भरे दौड़ते हुए वे इस प्रकार आये मानों बन्दूक कमान लिये कोई सुरक्षित किले पर दखल करने जा रहे हों। सुना कि एक श्वेतांग वीर ने मेरी बहन के सीने पर पिस्तौल टिका दी थी, लेकिन यह सब अपनी आँखों से देखा नहीं। अब भी मैं अर्धनिद्रित अवस्था में बिस्तर पर बैठा था कि क्रेगन ने पूछा, अरविन्द घोष कौन है? आप ही हैं क्या? मैंने कहा, 'हां, मैं ही हूँ'। तुरन्त ही उन्होंने एक सिपाही को मुझे गिरफ्तार कर लेने के लिये कहा। फिर क्रेगन द्वारा प्रयोग किये गये अत्यन्त अभद्र वाक्य के कारण हम दोनों में कुछ क्षण के लिये झड़प हो गई। मैंने खानातलाशी के वारन्ट की मांग की, उसे पढ़ा और हस्ताक्षर किये। वारन्ट में बम का जिक्र देखकर मैं समझ गया कि पुलिस व सेना का यह आगमन मुजफ्फरपुर के हत्याकांड से सम्बध्द है। ..... उसके बाद ही क्रेगन के हुक्म से मेरे हाथों में हथकड़ी और कमर में रस्सी बांध दी गई।" श्रीअरविन्द नीचे फर्श पर ही सोते थे। यह देखकर क्रेगन ने श्रीअरविन्द से पूछा था कि पढ़े-लिखे व्यक्ति के लिये सजावट-विहीन कमरे में रहना क्या शर्म की बात नहीं है? श्रीअरविन्द ने कहा, "मैं दरिद्र हूँ और दरिद्र की तरह रहता हूँ।" क्रेगन ने इस कथन का मजाक उड़ाया।

श्रीअरविन्द ने लिखा है कि, "देश प्रेम, स्वार्थ- त्याग और दारिद्रय-व्रत का माहात्म्य इस स्थूलबुध्दि अंग्रेज को समझना दु:साध्य समझकर मैंने उसकी कोशिश नहीं की।" तलाशी में श्रीअरविन्द के कागजपत्र और उनकी साहित्यिक रचनायें ही मिली जिन्हें जब्त कर लिया गया। किसी तरह की विस्फोट सामग्री वहां थी ही नहीं। एक डिब्बे में दक्षिणेश्वर की पवित्र मिट्टी रखी हुई थी। क्लार्क साहब ने उसका निरीक्षण किया जैसे वह कोई भयंकर विस्फोटक पदार्थ हो। यह तलाशी लगभग 5 घंटे तक चलती रही।

एक दिन हवालात में रहने के बाद श्रीअरविन्द को अलीपुर जेल ले जाया गया और एक वर्ष तक वे वहीं रहे। इस काल को उन्होंने आश्रमवास कहा है। अपनी कोठरी के बारे में लिखते हैं कि, "मेरी निर्जन काल कोठरी 9 फुट लम्बी, 5-6 फुट चौड़ी थी। उसमें कोई खिड़की नहीं थी। सामने के भाग में बड़ा सा लोहे का छड़दार फाटक था। यहीं पिंजरा मेरा आवास था।" तथा "इस तपते हुए कमरे में जेल के ही बने हुए दो मोटे कम्बल हमारे बिछौने थे। तकिया नहीं था इसलिये एक कम्बल बिछाकर और दूसरे को तह करके तकिया बनाकर सोता था। जब गर्मी का क्लेश असह्य हो उठता और रहा नहीं जाता तो जमीन पर लोटकर शरीर को शीतल करके आराम पाता। माँ वसुन्धरा के शीतल स्पर्श में क्या सुख हैं, यह तब मेरी समझ में आता।"

श्रीअरविन्द के गिरफ्तार होने का समाचार बड़ी तेजी से सारे देश में फैल गया। 18 मई, 1908 को मजिस्ट्रेट विर्ले की अदालत में मुकदमा शुरू हुआ। 13 जून, 1908 के 'वन्देमातरम्' में श्रीअरविन्द की बहन सरोजिनी देवी की एक अपील प्रकाशित हुई। सरोजिनी ने लिखा, "मेरे देशवासी जानते हैं कि मेरे भाई अरविन्द घोष एक गम्भीर अपराध के दोषी ठहराये गये हैं। लेकिन मेरा विश्वास है और मेरे यह सोचने का कारण है कि मेरे देशवासियों का बहुमत यह विश्वास करता है कि वे पूर्ण निर्दोष हैं। मैं सोचती हूँ कि यदि योग्य वकील उनकी पैरवी करें तो वे निश्चित रूप से छूट जायेंगे। पर जैसा कि उन्होंने मातृभूमि की सेवा में दरिद्रता का व्रत लिया है, उनके पास विशिष्ट बैरिस्टर करने के लिए साधन नहीं है। अत: इस दु:खद आवश्यकता में उनकी ओर से मैं देशवासियों की जन-भावना और उदारता के लिए अपील करती हूँ। मैं जानती हूँ कि मेरे सभी देशवासी उनके राजनीतिक विचारों को स्वीकार नहीं करते लेकिन मुझे यह कहने में कुछ संकोच अनुभव हो रहा है कि सम्भवत: ऐसे कम ही भारतीय होंगे जो उनकी महान उपलब्धियों, आत्मत्याग, देश के लिये एकात्म भक्ति और चरित्र की उच्च आध्यात्मिकता की प्रशंसा न करें। इन गुणों ने ही मुझ नारी को यह साहस दिया है कि मैं भारत के प्रत्येक बेटे और बेटी से अपने और उन सबके भाई की रक्षा हेतु सहायता के लिए कहूँ।" इस अपील का प्रभाव हुआ लेकिन जो धन एकत्र हुआ वह शीघ्र ही खर्च हो गया। 19 अगस्त, 1908 को यह केस सेशन सुपुर्द कर दिया गया। यह एक अजीव संयोग था कि सेशन जज बीचक्राफ्ट कैम्ब्रिज में श्री अरविन्द का सहपाठी रहा था। ग्रीक में उसे द्वितीय स्थान मिला था जबकि श्री अरविन्द प्रथम आये थे।

इस केस में बचाव पक्ष की ओर से बैरिस्टर चितंरजन दास और सरकारी पक्ष के वकील नॉर्टन के कानूनी दावपेंच और मेधाशक्ति का मुकाबला अदालती कार्यवाहियों के इतिहास में अप्रतिम है। चितरंजनदास दस माह तक एकाग्रचित होकर इस केस में लगे रहे। उन्होंने कोई फीस तो ली ही नहीं बल्कि घोड़ा-गाड़ी भी बेच दी और जब केस समाप्त हुआ तो वे लगभग पचास हजार रुपये के ऋणी हो चुके थे। इस केस में दो सौ से अधिक गवाहों से जिरह हुई। चार हजार कागजात प्रस्तुत किये गये और लगभग पांच सौ वस्तुएं- बम, विस्फोटक पदार्थ और हथियार सबूत में पेश की गई। चितरंजनदास का बचाव भाषण नौ दिन तक चला था जो कानूनी भाषणों में अद्वितीय है।

वैसे तो अलीपुर बम केस में अनेक अभियुक्त थे लेकिन सरकार का असली निशाना थे श्री अरविन्द। अपने फैसले मे बीचक्रफ्ट ने भी स्वीकार किया था कि

श्री अरविन्द को अपराधी सिद्ध करने के लिए ही सरकारी पक्ष सर्वाधिक उत्सुक था। यदि श्रीअरविन्द न होते तो केस कभी का समाप्त हो गया होता। श्रीअरविन्द का एक पत्र भी, जो उन्होंने अपनी पत्नी को लिखा था, षड़यंत्र के सबूत के रूप में अदालत में प्रस्तुत किया गया था। इस पत्र में श्रीअरविन्द ने मृणालिनी देवी को लिखा था- "आजकल मेरा अपना कोई काम नहीं है। मैं वही करता हूँ जो करने के लिए उस (भगवान्) की आज्ञा होती है मैं सदैव उस (भगवान्) के काम में व्यस्त रहता हूँ। मेरे मन में एक स्वाभाविक परिवर्तन हुआ है। मेरी अपनी कोई इच्छा नहीं है। वे (भगवान्)

तुम्हारे प्रति भी सदय होंगे और वे तुम्हें सही मार्ग दिखायेंगे। तुम मेरी पत्नी (सह-धर्मिणी) हो। क्या मेरे लक्ष्य में मेरी सहायता नहीं करोगी? देश की स्वाधीनता के लिए ब्रह्मतेज आवश्यक है।" सरकारी पक्ष की ओर से कहा गया कि इसमें श्री अरविन्द अपनी पत्नी को भी षड़यंत्र में शामिल होने के लिये कह रहे हैं। चितरंजनदास ने स्पष्ट किया कि इसका सम्बन्ध आध्यात्मिक विश्वास से है, षड़यंत्र से नहीं। चितरंजनदास की प्रतिभा और योग्यता में श्रीअरविन्द को पूरा विश्वास था। अपनी बहस को समाप्त करते हुए चितरंजन दास ने जो कुछ कहा, वह भविष्यवाणी से कम नहीं है और देशबन्धु की अन्तर्दृष्टि का परिचायक है। उन्होंने कहा कि "मेरी अपील आपसे यह है कि इस षड़यंत्र के मौन हो जाने के बहुत पश्चात्, इस आंधी तूफान के समाप्त हो जाने के बहुत बाद, उनके देहावसान के बहुत बाद उन्हें संसार देशभक्ति का कवि, राष्ट्रीयता का महीसा और समस्त मानवता का प्रेमी मानेगा। बहुत बाद तक उनके शब्द ध्वनित एवं प्रतिध्वनित होते रहेंगे, केवल इस देश में ही नहीं अपितु समुद्र पार देश-देशांतरों में। इसलिये मेरा निवेदन है कि आज जो व्यक्ति आपके सामने कठघरे में खड़ा है वह केवल आपके न्यायालय में ही नहीं खड़ा है अपितु इतिहास के महान्यायालय में न्याय की मांग कर रहा है।"

6 मई, 1909 को बीचक्राफ्ट ने अलीपुर बम केस का फैसला सुनाया। फैसले के अनुसार श्रीअरविन्द और कुछ साथियों को रिहाई का हुक्म मिला, कुछ को कालेपानी का सजा मिली और बारीन्द्र एवं उल्लासकर दत्त को फांसी की सजा सुनाई गई। चितरंजनदास ने इस फैसले के खिलाफ हाईकोर्ट में अपील की और वहाँ बारीन्द्र एंव उल्लासकर का सजा कालेपानी में बदल दी गई। मुख्य न्यायाधीश ने दास की प्रशंसा करते हुए फैसले में यह लिखा कि, "मैं विशेष रूप से श्री सी.आर दास की प्रशंसा करना चाहता हूँ जिन्होंने इतने उत्तम ढंग से केस प्रस्तुत किया है।" अलीपुर बम केस के बाद श्री सी. आर. दास 'देशबन्धु' हो गये और उनकी ख्याति देशभक्त और विधिवेत्ता के रूप में भर में फैल गई। वस्तुत: यह केस उनके जीवन में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ देने वाला सिद्ध हुआ।

श्री अरविन्द के जीवन को भी अलीपुर कारागार के 'आश्रमवास' ने एक नई दिशा दी। जेल में श्रीअरविन्द का योगाभ्यास, दैवी अनुभूतियां, आत्मचिंतन और गीता-उपनिषद पर विचार चलता रहा। ध्यानस्थ मुद्रा में उन्हें विवेकानन्द की वाणी भी सुनाई दी। अपने सब अनुभवों का विवरण श्री अरविन्द ने बाद में पांडिचेरी में साधकों के साथ बात-चीत करते हुए समय-समय पर सुनाया था। 14 मई 1909 को उन्होंने देशवासियों के नाम एक पत्र में कृतज्ञता व्यक्त की और लिखा कि जिन लोगों ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में मेरे ट्रायल के दौरान मेरी मदद की है, मैं उनका आभारी हूँ। यदि देश के प्रति मेरे प्रेम ने मुझे में डाला था तो देशवासियों के प्रेम ने मुझे उस खतरे से सुरक्षित निकाल लिया है।

30 मई 1909 को श्री अरविन्द ने उत्तरपाड़ा में एक जनसभा को सम्बोधित किया। उनका यह उत्तरपाड़ा अभिभाषण बहुत प्रसिध्द है। अपने जेल-प्रवास की अनुभूतियों का विवरण और भावी कार्यक्रम की रूपरेखा का संकेत करते हुए श्रीअरविन्द ने उत्तरपाड़ा से कहा था- "भारत का उठना दूसरे देशों की तरह नहीं है। वह अपने लिए नहीं उठ रहा है कि दुर्बलों को कुचले। वह संसार पर उस शाश्वत प्रकाश को फैलाने के लिये उठ

रहा है जो उसे सौंपा गया है। भारत का अस्तित्व सदा से ही मानवता के लिये रहा है, अपने लिए नहीं, अत: यह आवश्यक है कि वह महान् बने-अपने लिए नहीं, मानवता के लिए।.....मैंने देखा कि मैं जेल की ऊंची दीवारों में, जिन्होंने मुझे लोगों से अलग कर दिया था, कैद नहीं हुँ। वह स्वयं वासुदेव ही थे जिन्होंने मुझे चारों ओर से घेर रखा था।"

कहना न होगा कि अलीपुर बम केस श्रीअरविन्द के जीवन की ही परिवर्तनकारी घटना नहीं है, हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का भी एक महत्वपूर्ण और गौरवशाली अध्याय है।

" भगवान् के प्रति आत्मनिवेदन में सत्यनिष्ठ और पूर्ण बनो और तुम्हारा जीवन सामंजस्यपूर्ण और सुन्दर हो जाएगा।"

-श्रीमां

इक्कीसवीं सदी का भारत और श्रीअरविन्द्र

चरणसिंह केदारखण्डी

यह संसार एक शुरुआत और आधार है
जहां जीवन और मन अपने
सुगठित सपनें सहेजते हैं
एक अजन्मी शक्ति का सत्य सृजित करना होगा
हम केवल मत्यु के हाथों में
भंगुर खिलौने नहीं है:
चिरन्तन है हमारी विस्मृत विशालताएं
जो आत्मशिखरों पर
प्रतीक्षारत है नव खोजों की;
अस्तित्व के अगाध विस्तार और गहराइयां
हमारा सच्चा रूप हैं। (सावित्री पृ० ४६)

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में यह धरती एक संभावना पिण्ड है और धरती पर इस संभावना का केन्द्र भारतवर्ष है। अतः आवश्यक है कि भारत स्वयं के सच्चे स्वरूप का देदीप्यमान और उदात्त चरित्र जीकर विश्व का मार्गदर्शन करे। लड़खड़ाती और दिशाहीन हो भटकती दुनिया की डगमगाती नौका की पतवार भारत अपनी प्रज्ञा और प्रेरणा की कुशलता से खेवे। भारत की इसी विशेषता के कारण यह पुण्य भूमि पूरब-पश्चिम के ज्ञानियों, रहस्यदर्शियों और अनुसंधानकर्ताओं की विचार भूमि बनी है। लगभग सवा पाँच सौ साल पहले क्रिस्टोफर कोलम्बस इसी भारत की खोज में निकला था किन्तु नियति ने उसे दूसरी ही दुनिया में पहुंचा दिया। कोलम्बस पत्थर के सोने की तलाश में निकला था इसलिए वहाँ पहुंचा जहा उसे पहुंचना था लेकिन कोलम्बस के अमेरिका पहुंचने के लगभग तीन सौ साल पश्चात् भारत की सैर करने वाले अमेरिकी लेखक मार्क ट्वेन ने जो "भारत दर्शन" किया वह भी कम रोचक नहीं है - 'यह भारत है। सपनों की राग-रंग की धरती बेहद अमीरी और अतिशय दरिद्रता की धरती, शान-

शौकत वालों और फटे हाल लोगों की धरती, मानव सभ्यता के फलने-फूलने की क्रीड़ास्थली, मनुष्य की वाणी की जन्मभूमि, इतिहास की जननी आख्यानों की दादी, रीति-रिवाजों की परदादी, जिसका गुजरा कल दुनिया की दूसरे हिस्सों की तुलना में प्राचीनतम् है'। अपने लेखकीय हास्य दृष्टि से ट्वेन भारत को जितना भी देख समझ सके उससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि भारत विश्व का एक निराला देश है जिसका अभ्युदय सीमाओं और लघुताओं में कुंठित होने के लिए नहीं बल्कि संसार को मुक्ति, आनन्द, सत्य और चिर-सौन्दर्य की ऊंचाइयों पर उठाने के लिए हुआ है।

भारत की सनातन योग परम्परा के इतिहास में ऐसा कोई दूसरा नाम नहीं है जिसने भारत और भारत के आन्तरिक जीवन को जानने की इतनी गहरी आध्यात्मिक तलाश की हो जितनी श्रीअरविन्द ने की है। इस अर्थ में वे प्राचीन ऋषि परम्परा के एकमात्र समकालीन उदाहरण हैं। प्रायः जनसामान्य शंकराचार्य और महात्मा बुद्ध को भारतीय ज्ञान-विज्ञान परम्परा का सुमेरु समझ बैठते हैं और यह भी प्रचलित है कि उन्होंने भारतीय आध्यात्मिकता के शिखर का साक्षात् किया। किन्तु 'ईश उपनिषद्' की व्याख्या में श्रीअरविन्द स्पष्ट लिखते है- "हमारे सबसे महानतम आधुनिक मस्तिष्क प्राचीन ऋषियों की ज्ञानधारा की मात्र उपनदियां हैं। शंकर, जिन्हें हम परम विशाल मानते हैं, के पास भी उनके ज्ञान का केवल अल्पांश था। बुद्ध तो उनके विश्वव्यापी साम्राज्य के उपमार्गों तक ही विचरण कर सके" (ईश उपनिषद् पु० ३६१) लेकिन श्रीअरविन्द के मन में समकालीन विभाजित भारतीय मनीषा को लेकर गहरा दुख भी था भारतीय ऋषियों की परम प्रज्ञा और आधुनिक भारतीय मन के बीच समझ और अनुभूति का जो विशाल अन्तर आ गया है उसे लेकर उन्होंनें अपनी भावनाएं इस प्रकार प्रकट की-

"भारत के लोग वेदों को बिल्कुल नहीं समझते हैं; यूरोपीय लोगों ने उनकी मात्र एक सतही समझ को ही व्यवस्थित किया है। इसलिए वेदों के रूप में प्राचीन ज्ञान हमारे लिए उस नदी की तरह है जो उन अन्धेरी गुफाओं में बह रही है जो सामान्य मानव के लिए अगम्य है। पहली बार उपनिषदों के रूप में वह नदी खुले मैदान में निकलती है। केवल वहीं (उपनिषदों में) वह हमारे लिए गम्य है। किन्तु यह धारा भी अन्धेरे जंगलों और विकट पर्वतों के बीच से बहती है और हमारे लिए इसका उपयोग केवल उन कुछ सुविधाजनक स्थलों पर ही हो पाता है जहां जंगल कम घना है या पर्वत शुरू हो रहा होता है। उन्हीं सुविधाजनक स्थलों पर लोगों ने पराभौतिक विचार और आध्यात्मिक साधना के कृत्रिम नगर बसा लिए हैं और उनमें से प्रत्येक पूरी नदी पर अपने नियंत्रण का स्वांग कर रहा है। वे अपने निवास स्थलों को वेदान्त या सांख्य, अद्वैत या द्वैत, शैवमत या वैष्णवमत और अन्य हजारों नामों से पुकारते है और दम्भ भरते हैं कि सच्चा पथ उन्हीं का है और वे ही ज्ञान की थाती के संरक्षक है। किन्तु वस्तुतः हममें से प्रत्येक सनातन धर्म के सत्य के केवल अल्पांश को ही जान सकता है, क्योंकि हममें से कोई भी उपनिषदों के परम ज्ञान की गहरी समझ नहीं रखता है" (ईश उपनिषद पू० ३६१-२)।

श्रीअरविन्द की महान विनम्रता देखिए स्थिति का इतनी ऊँचाई से निरपेक्ष मूल्यांकन करने के पश्चात् भी वे अपने कथन के अन्त में स्वयं को भी अपनी विवेचना में शामिल करते हैं और ईश उपनिषद के १८ सूत्रों का लगभग ६०० पृष्ठों में तीन अलग-अलग व्याख्याओं के साथ तात्विक विवेचन करने के उपरान्त भी लिखते हैं- 'हममें से कोई भी उपनिषदों के परम ज्ञान की गहरी समझ नहीं रखता है। ऐसा आत्म विलोपन उनके असाधारण अवतार होने का प्रमाण है। जिस किसी ने भी 'वेद रहस्य' उपनिषद 'ऐसेज ऑन द गीता' और 'रिनेशा इन इण्डिया' का गहरा तात्विक अध्ययन किया होगा वे इन पंक्तियों के लेखक की इस बात से सहमत होंगे कि श्रीअरविन्द ने न केवल भारतीय ज्ञानधारा के समग्र रास्ते का (उस हिस्से

का भी जो घने जंगलों वाला और अगम्य पर्वत शिखरों से होकर गुजरने वाला है) सफर तय किया है बल्कि वे उस ज्ञानधारा के स्रोत का पूरा पता भी जानते हैं। भारत के आन्तरिक जीवन को श्रीअरविन्द कितनी गहराई से जानते हैं इसका एक दृष्टान्त देखिए-

'वस्तुत: आध्यात्मिकता ही भारतीय मन की मुख्य चाबी है अनन्त का भाव उसके लिए पूर्णतः स्वाभाविक है। भारत ने प्रारम्भ से ही देखा और तर्क विचार के युगों और घोर अज्ञानान्धकार के समय में भी, उसने कभी अपनी इस अंतर्दृष्टि को खोया नहीं कि जीवन को एक पक्षीय प्रकाश से नहीं देखा जा सकता है और इसे केवल बाह्य विवरणों की शक्तियों के सहारे पूर्णतः नहीं जिया जा सकता। भारत पार्थिव नियमों और शक्तियों की महानता से हमेशा परिचित रहा है भौतिक विज्ञानों की महत्ता के सम्बन्ध में उसकी हमेशा पैनी दृष्टि रही है; भारत जानता था सामान्य जीवन की कलाओं को किस प्रकार संगठित करना है। किन्तु भारत ने यह भी पाया कि भौतिक स्वरूप तब-तक अपनी पूर्णता प्राप्त नहीं करता जब तक वह पराभौतिक के साथ सही सम्बन्ध स्थापित न कर ले; भारत ने यह भी देखा कि मानव के वर्तमान दौर में या उसकी सतही दृष्टि के सहारे विश्व की जटिलताओं की व्याख्या नहीं हो सकती, और यह भी कि (हर वस्तु के) पीछे से अन्य शक्तियां भी रहती हैं, मानव के भीतर ही दूसरी शक्तिया रहती हैं जिनके प्रति वह अनभिज्ञ रहता है, यह भी कि मानव अपना अस्तित्व के मात्र छोटे हिस्से के प्रति ही सजग है। भारत ने यह भी पाया कि अदृश्य हमेशा दृश्य को ?, अतीन्द्रिय, इन्द्रियबोध को उसी प्रकार आवृत्त किए रहता है जिस प्रकार अनन्तता सामान्य सीमा को। भारत ने यह भी देखा कि मानव के पास स्वयं को अतिक्रमण करने की ताकत भी है, उसके पास ज्यादा परिपूर्णता और गम्भीरता से वह बन जाने की सामर्थ्य है जो वह अभी नहीं है भारत ने यह भी देखा कि हमारे जीवन से परे भी जीवन की परते हैं। हमारे वर्तमान मन के ऊपर भी मन की परते हैं और इनसे (जीवन और मन से) परे भारत ने आत्मा की जगमगाहट को देखा (रिनेशा इन इण्डिया पृ० ६-७)

समकालीन भारत में सबसे बड़ा सवाल यह है कि श्रीअरविन्द के जीवन दर्शन को, उनके सपनों के भारत को किस प्रकार साकार करें? एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि श्रीअरविन्द के महान योग और दर्शन के अवदान का ऋण कैसे चुकाएं। कुछ सुझाव इस प्रकार हैं-

१. हमारा सबसे पहला दायित्व भारत की सनातन ज्ञाननिधि का सही अर्थ समझना और समझाना है। वेद, उपनिषद और गीता के कालजयी सूत्रों से भारतीय जनमानस कटा हुआ है। अपने ग्रन्थों में श्रीअरविन्द ने उस प्राचीन ज्ञाननिधि की जो संकेत रूप में कुंजिया हमें सौंपी हैं, उन्हें भी हम पूरी तरह समझ नहीं पाए हैं। मेरा स्पष्ट मानना है कि भारत की प्राचीन ज्ञाननिधि को जनमानस तक पहुंचाने में श्रीअरविन्द का साहित्य एक दिव्य स्वर्णिम सेतु का कार्य कर सकता है। अत: हमारा दायित्व है कि हम सरल भाषा में उनके विचार दर्शन को आम जनमानस तक पहुंचाए। दुर्भाग्य से भारत में अभी भी एक बड़ा पढ़ा-लिखा वर्ग ऐसा है जो पाश्चात्य विद्वानों के प्रमाणपत्रों के लिए व्याकुल रहता है और अपनी ज्ञान परम्परा को हेय दृष्टि से देखता है। इस माहौल में हमारा दायित्व और भी बढ़ जाता है।

२. श्री अरविन्द और श्रीमाँ के साहित्य से युवा वर्ग को जोड़ना हमारा अगला दायित्व होना चाहिए। भारत एक युवा देश है और इसकी ६५ प्रतिशत जनसंख्या युवाओं की है। किन्तु भारत का युवा लगभग दिशाहीन जीवन जी रहा है। उसके लिए आधुनिकता के मायने यही है कि वह पूरी तरह पाश्चात्य जीवन शैली के रंग में रंग जाए। वह पागलपन की हद तक व्यक्तिगत आजादी का पुरोधा है। किन्तु राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रीय चरित्र को लेकर पूरी तरह उदासीन है। हमें इस सन्नाटे को ललकारना होगा। युवाओं तक पूज्य श्रीमाँ और श्रीअरविन्द के विचारों को उनकी भाषा में पहुंचाना होगा।

३. भारत की प्रचण्ड सुसुप्त शक्ति का जागरण करना हमारा अगला दायित्व होना चाहिए। आजादी के दिनों का वह शुरुआती जोश अब तमस, अलस, अपवित्रता और दुविचारों के नेपथ्य में सिमट गया है। हमें घटाटोप अन्धकार में जाकर शक्ति जागरण का दीप जलाना है और प्रतिरोध के बावजूद युवाओं के कानों में श्रीअरविन्द का यह सन्देश सुनाना है- "विचार के माध्यम से कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है। मृत्यु, बीमारी, दरिद्रता, अपमान- इनमें से कोई भी या सभी विचार के बल पर जीते जा सकते हैं। एक अकेला विचार कि 'मैं शक्तिमान हूँ! मैं शक्तिमान हूँ!' यदि उत्कटता, स्थिरता, विश्वास, धैर्य के साथ सहेजा जाए और उसकी मौन उद्घोषणा की जाए तो यह पर्याप्त होगा। यदि निशा के आगमन पर सारा भारत १० मिनट तक प्रत्येक सन्ध्याकाल में इस एक विचार पर दृढ़ता से चिंतन करे कि "हम एक है, हम एक हैं। ऐसा कोई विचार हमारे सामने टिक नहीं सकता जो हमें हमारे विभाजित होने का सुझाव दे। क्योंकि हम एक हैं। हम एक हैं और हमारे बीच के सारे झगड़े मात्र भ्रम हैं- इस चिंतन से जिस शक्ति का सृजन होगा उसकी हम शायद ही कल्पना कर सकते हैं" (दि आइडियल ऑफ कर्मयोगिन पृ० ६१)

अतः यह गुरु के आशीर्वाद से एक नए संग्राम को छेड़ने का समय है। यह समय है भागवत मुहूर्त का अतिमानस की पार्थिव अनुभूति का यह एक महान कार्य है जिसके लिए हमे स्वयं महान बनना पड़ेगा। जब तक खून और पसीना नहीं बहता तब तक कुछ भी कालजयी सृजन संभव नहीं होता यह श्रम का और सभ्यता का पहला नियम है। इसलिए हमें निराश नहीं होना चाहिए। अगर हम भारत में सैकड़ों अन्य आध्यात्मिक 'मास्टरों' की अपेक्षा आजकल श्रीअरविन्द का नाम कम सुन पाते हैं हमें तब भी हैरान नहीं होना चाहिए जब कुछ 'बहुचर्चित इतिहासकार आधुनिक भारत के निर्माताओं में पूज्य गुरुदेव की गिनती नहीं करते। श्रीअरविन्द धूमकेतु नहीं हैं कि एक चिरंतन सूरज की भांति विश्व के आध्यात्मिक आकाश में सदैव देदीप्यमान हैं। भाव, भाषा, भंगिमा और विचार की संकीर्णता के बादल छँटते ही हम पूरी धरती को उनकी दिव्य चेतना में सराबोर होते देखेंगे। बुद्धि के दंभ से, तर्कों की बाजीगरी से और आंकड़ों की उबाऊ चालाकियों से चन्द महफिलों में तालियां बटोरी जा सकती हैं किन्तु देशकाल के प्रवाह की दिशा को बदला नहीं जा सकता, सत्य के सोम को सुखाया नहीं जा सकता। इसलिए बौद्धिक कुशलता से लिखा जाने वाला कोई भी इतिहास कम से कम श्रीअरविन्द के राजनैतिक और दार्शनिक अवदान का मूल्याकन नहीं कर सकता। क्योंकि वे एक ऐसे राष्ट्रीय नेता रहे हैं जिन्होंने भारत की आत्मा का साक्षात्कार किया है, जिन्होंने वासुदेव श्रीकृष्ण से प्रत्यक्ष मार्गदर्शन प्राप्त किया है। अनुभूति की भूमि पर उतरे बिना और समर्पण की सचाई के बिना उन पर कुछ भी न तो लिखा जा सकता है और न समझा जा सकता है। हमें यकीन है आने वाला भारत उनकी महाचेतना में स्वयं को धन्य करेगा।

"आस्था- भगवान् में आत्मविश्वास और भगवान् के विजय में स्थिर दृढ़ विश्वास।"

-श्रीमां

इक्कीसवीं सदी का भारत और श्रीअरविन्द्र

चरणसिंह केदारखण्डी

यह संसार एक शुरुआत और आधार है
जहां जीवन और मन अपने
सुगठित सपनें सहेजते हैं
एक अजन्मी शक्ति का सत्य सृजित करना होगा
हम केवल मत्यु के हाथों में
भंगुर खिलौने नहीं है:
चिरन्तन है हमारी विस्मृत विशालताएं
जो आत्मशिखरों पर
प्रतीक्षारत है नव खोजों की;
अस्तित्व के अगाध विस्तार और गहराइयां
हमारा सच्चा रूप हैं। (सावित्री पृ० ४६)

सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड में यह धरती एक संभावना पिण्ड है और धरती पर इस संभावना का केन्द्र भारतवर्ष है। अतः आवश्यक है कि भारत स्वयं के सच्चे स्वरूप का देदीप्यमान और उदात्त चरित्र जीकर विश्व का मार्गदर्शन करे। लड़खड़ाती और दिशाहीन हो भटकती दुनिया की डगमगाती नौका की पतवार भारत अपनी प्रज्ञा और प्रेरणा की कुशलता से खेवे। भारत की इसी विशेषता के कारण यह पुण्य भूमि पूरब-पश्चिम के ज्ञानियों, रहस्यदर्शियों और अनुसंधानकर्ताओं की विचार भूमि बनी है। लगभग सवा पाँच सौ साल पहले क्रिस्टोफर कोलम्बस इसी भारत की खोज में निकला था किन्तु नियति ने उसे दूसरी ही दुनिया में पहुंचा दिया। कोलम्बस पत्थर के सोने की तलाश में निकला था इसलिए वहाँ पहुंचा जहा उसे पहुंचना था लेकिन कोलम्बस के अमेरिका पहुंचने के लगभग तीन सौ साल पश्चात् भारत की सैर करने वाले अमेरिकी लेखक मार्क ट्वेन ने जो "भारत दर्शन" किया वह भी कम रोचक नहीं है - 'यह भारत है। सपनों की राग-रंग की धरती बेहद अमीरी और अतिशय दरिद्रता की धरती, शान-शौकत वालों और फटे हाल लोगों की धरती, मानव सभ्यता के फलने-फूलने की क्रीड़ास्थली, मनुष्य की वाणी की जन्मभूमि, इतिहास की जननी आख्यानों की दादी, रीति-रिवाजों की परदादी, जिसका गुजरा कल दुनिया की दूसरे हिस्सों की तुलना में प्राचीनतम् है'। अपने लेखकीय हास्य दृष्टि से ट्वेन भारत को जितना भी देख समझ सके उससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि भारत विश्व का एक निराला देश है जिसका अभ्युदय सीमाओं और लघुताओं में कुंठित होने के लिए नहीं बल्कि संसार को मुक्ति, आनन्द, सत्य और चिर-सौन्दर्य की ऊंचाइयों पर उठाने के लिए हुआ है।

भारत की सनातन योग परम्परा के इतिहास में ऐसा कोई दूसरा नाम नहीं है जिसने भारत और भारत के आन्तरिक जीवन को जानने की इतनी गहरी आध्यात्मिक तलाश की हो जितनी श्रीअरविन्द ने की है। इस अर्थ में वे प्राचीन ऋषि परम्परा के एकमात्र समकालीन उदाहरण हैं। प्रायः जनसामान्य शंकराचार्य और महात्मा बुद्ध को भारतीय ज्ञान-विज्ञान परम्परा का सुमेरु समझ बैठते हैं और यह भी प्रचलित है कि उन्होंने भारतीय आध्यात्मिकता के शिखर का साक्षात् किया। किन्तु 'ईश उपनिषद्' की व्याख्या में श्रीअरविन्द स्पष्ट लिखते है- "हमारे सबसे महानतम आधुनिक मस्तिष्क प्राचीन ऋषियों की ज्ञानधारा की मात्र उपनदियां हैं। शंकर, जिन्हें हम परम विशाल मानते हैं, के पास भी उनके ज्ञान का केवल अल्पांश था। बुद्ध तो उनके विश्वव्यापी साम्राज्य के उपमार्गों तक ही विचरण कर सके" (ईश उपनिषद् पु० ३६१) लेकिन श्रीअरविन्द के मन में समकालीन विभाजित भारतीय मनीषा को लेकर गहरा दुख भी था भारतीय ऋषियों की परम प्रज्ञा और आधुनिक भारतीय मन के बीच समझ और अनुभूति का जो विशाल अन्तर आ गया है उसे लेकर उन्होंनें अपनी भावनाएं इस प्रकार प्रकट की-
"भारत के लोग वेदों को बिल्कुल नहीं समझते हैं;

यूरोपीय लोगों ने उनकी मात्र एक सतही समझ को ही व्यवस्थित किया है। इसलिए वेदों के रूप में प्राचीन ज्ञान हमारे लिए उस नदी की तरह है जो उन अन्धेरी गुफाओं में बह रही है जो सामान्य मानव के लिए अगम्य है। पहली बार उपनिषदों के रूप में वह नदी खुले मैदान में निकलती है। केवल वहीं (उपनिषदों में) वह हमारे लिए गम्य है। किन्तु यह धारा भी अन्धेरे जंगलों और विकट पर्वतों के बीच से बहती है और हमारे लिए इसका उपयोग केवल उन कुछ सुविधाजनक स्थलों पर ही हो पाता है जहां जंगल कम घना है या पर्वत शुरू हो रहा होता है। उन्हीं सुविधाजनक स्थलों पर लोगों ने पराभौतिक विचार और आध्यात्मिक साधना के कृत्रिम नगर बसा लिए हैं और उनमें से प्रत्येक पूरी नदी पर अपने नियंत्रण का स्वांग कर रहा है। वे अपने निवास स्थलों को वेदान्त या सांख्य, अद्वैत या द्वैत, शैवमत या वैष्णवमत और अन्य हजारों नामों से पुकारते है और दम्भ भरते हैं कि सच्चा पथ उन्हीं का है और वे ही ज्ञान की थाती के संरक्षक है। किन्तु वस्तुतः हममें से प्रत्येक सनातन धर्म के सत्य के केवल अल्पांश को ही जान सकता है, क्योंकि हममें से कोई भी उपनिषदों के परम ज्ञान की गहरी समझ नहीं रखता है" (ईश उपनिषद पृ० ३६१-२) ।

श्रीअरविन्द की महान विनम्रता देखिए स्थिति का इतनी ऊँचाई से निरपेक्ष मूल्यांकन करने के पश्चात् भी वे अपने कथन के अन्त में स्वयं को भी अपनी विवेचना में शामिल करते हैं और ईश उपनिषद के १८ सूत्रों का लगभग ६०० पृष्ठों में तीन अलग-अलग व्याख्याओं के साथ तात्विक विवेचन करने के उपरान्त भी लिखते हैं- 'हममें से कोई भी उपनिषदों के परम ज्ञान की गहरी समझ नहीं रखता है। ऐसा आत्म विलोपन उनके असाधारण अवतार होने का प्रमाण है। जिस किसी ने भी 'वेद रहस्य' उपनिषद 'ऐसेज ऑन द गीता' और 'रिनेशा इन इण्डिया' का गहरा तात्विक अध्ययन किया होगा वे इन पंक्तियों के लेखक की इस बात से सहमत होंगे कि श्रीअरविन्द ने न केवल भारतीय ज्ञानधारा के समग्र रास्ते का (उस हिस्से का भी जो घने जंगलों वाला और अगम्य पर्वत शिखरों से होकर गुजरने वाला है) सफर तय किया है बल्कि वे उस ज्ञानधारा के स्रोत का पूरा पता भी जानते हैं। भारत के आन्तरिक जीवन को श्रीअरविन्द कितनी गहराई से जानते हैं इसका एक दृष्टान्त देखिए-

'वस्तुत: आध्यात्मिकता ही भारतीय मन की मुख्य चाबी है अनन्त का भाव उसके लिए पूर्णतः स्वाभाविक है। भारत ने प्रारम्भ से ही देखा और तर्क विचार के युगों और घोर अज्ञानान्धकार के समय में भी, उसने कभी अपनी इस अंतर्दृष्टि को खोया नहीं कि जीवन को एक पक्षीय प्रकाश से नहीं देखा जा सकता है और इसे केवल बाह्य विवरणों की शक्तियों के सहारे पूर्णतः नहीं जिया जा सकता। भारत पार्थिव नियमों और शक्तियों की महानता से हमेशा परिचित रहा है भौतिक विज्ञानों की महत्ता के सम्बन्ध में उसकी हमेशा पैनी दृष्टि रही है; भारत जानता था सामान्य जीवन की कलाओं को किस प्रकार संगठित करना है। किन्तु भारत ने यह भी पाया कि भौतिक स्वरूप तब-तक अपनी पूर्णता प्राप्त नहीं करता जब तक वह पराभौतिक के साथ सही सम्बन्ध स्थापित न कर ले; भारत ने यह भी देखा कि मानव के वर्तमान दौर में या उसकी सतही दृष्टि के सहारे विश्व की जटिलताओं की व्याख्या नहीं हो सकती, और यह भी कि (हर वस्तु के) पीछे से अन्य शक्तियां भी रहती हैं, मानव के भीतर ही दूसरी शक्तिया रहती हैं जिनके प्रति वह अनभिज्ञ रहता है, यह भी कि मानव अपना अस्तित्व के मात्र छोटे हिस्से के प्रति ही सजग है। भारत ने यह भी पाया कि अदृश्य हमेशा दृश्य को ?, अतीन्द्रिय, इन्द्रियबोध को उसी प्रकार आवृत्त किए रहता है जिस प्रकार अनन्तता सामान्य सीमा को। भारत ने यह भी देखा कि मानव के पास स्वयं को अतिक्रमण करने की ताकत भी है, उसके पास ज्यादा परिपूर्णता और गम्भीरता से वह बन जाने की सामर्थ्य है जो वह अभी नहीं है भारत ने यह भी देखा कि हमारे जीवन से परे भी जीवन की परते हैं। हमारे वर्तमान मन के ऊपर

भी मन की परते हैं और इनसे (जीवन और मन से) परे भारत ने आत्मा की जगमगाहट को देखा (रिनेशा इन इण्डिया पृ० ६-७)

समकालीन भारत में सबसे बड़ा सवाल यह है कि श्रीअरविन्द के जीवन दर्शन को, उनके सपनों के भारत को किस प्रकार साकार करें? एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि श्रीअरविन्द के महान योग और दर्शन के अवदान का ऋण कैसे चुकाएं। कुछ सुझाव इस प्रकार हैं-

१. हमारा सबसे पहला दायित्व भारत की सनातन ज्ञाननिधि का सही अर्थ समझना और समझाना है। वेद, उपनिषद और गीता के कालजयी सूत्रों से भारतीय जनमानस कटा हुआ है। अपने ग्रन्थों में श्रीअरविन्द ने उस प्राचीन ज्ञाननिधि की जो संकेत रूप में कुंजिया हमें सौंपी हैं, उन्हें भी हम पूरी तरह समझ नहीं पाए हैं। मेरा स्पष्ट मानना है कि भारत की प्राचीन ज्ञाननिधि को जनमानस तक पहुंचाने में श्रीअरविन्द का साहित्य एक दिव्य स्वर्णिम सेतु का कार्य कर सकता है। अत: हमारा दायित्व है कि हम सरल भाषा में उनके विचार दर्शन को आम जनमानस तक पहुंचाए। दुर्भाग्य से भारत में अभी भी एक बड़ा पढ़ा-लिखा वर्ग ऐसा है जो पाश्चात्य विद्वानों के प्रमाणपत्रों के लिए व्याकुल रहता है और अपनी ज्ञान परम्परा को हेय दृष्टि से देखता है। इस माहौल में हमारा दायित्व और भी बढ़ जाता है।

२. श्री अरविन्द और श्रीमाँ के साहित्य से युवा वर्ग को जोड़ना हमारा अगला दायित्व होना चाहिए। भारत एक युवा देश है और इसकी ६५ प्रतिशत जनसंख्या युवाओं की है। किन्तु भारत का युवा लगभग दिशाहीन जीवन जी रहा है। उसके लिए आधुनिकता के मायने यही है कि वह पूरी तरह पाश्चात्य जीवन शैली के रंग में रंग जाए। वह पागलपन की हद तक व्यक्तिगत आजादी का पुरोधा है। किन्तु राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रीय चरित्र को लेकर पूरी तरह उदासीन है। हमें इस सन्नाटे को ललकारना होगा। युवाओं तक पूज्य श्रीमाँ और श्रीअरविन्द के विचारों को उनकी भाषा में पहुंचाना होगा।

३. भारत की प्रचण्ड सुसुप्त शक्ति का जागरण करना हमारा अगला दायित्व होना चाहिए। आजादी के दिनों का वह शुरुआती जोश अब तमस, अलस, अपवित्रता और दुविचारों के नेपथ्य में सिमट गया है। हमें घटाटोप अन्धकार में जाकर शक्ति जागरण का दीप जलाना है और प्रतिरोध के बावजूद युवाओं के कानों में श्रीअरविन्द का यह सन्देश सुनाना है- "विचार के माध्यम से कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है। मृत्यु, बीमारी, दरिद्रता, अपमान- इनमें से कोई भी या सभी विचार के बल पर जीते जा सकते हैं। एक अकेला विचार कि 'मैं शक्तिमान हूँ! मैं शक्तिमान हूँ!' यदि उत्कटता, स्थिरता, विश्वास, धैर्य के साथ सहेजा जाए और उसकी मौन उद्घोषणा की जाए तो यह पर्याप्त होगा। यदि निशा के आगमन पर सारा भारत १० मिनट तक प्रत्येक सन्ध्याकाल में इस एक विचार पर दृढ़ता से चिंतन करे कि "हम एक है, हम एक हैं। ऐसा कोई विचार हमारे सामने टिक नहीं सकता जो हमें हमारे विभाजित होने का सुझाव दे। क्योंकि हम एक हैं। हम एक हैं और हमारे बीच के सारे झगड़े मात्र भ्रम हैं- इस चिंतन से जिस शक्ति का सृजन होगा उसकी हम शायद ही कल्पना कर सकते हैं" (दि आइडियल ऑफ कर्मयोगिन पृ० ६१)

अतः यह गुरु के आशीर्वाद से एक नए संग्राम को छेड़ने का समय है। यह समय है भागवत मुहूर्त का अतिमानस की पार्थिव अनुभूति का यह एक महान कार्य है जिसके लिए हमे स्वयं महान बनना पड़ेगा। जब तक खून और पसीना नहीं बहता तब तक कुछ भी कालजयी सृजन संभव नहीं होता यह श्रम का और सभ्यता का पहला नियम है। इसलिए हमें निराश नहीं होना चाहिए। अगर हम भारत में सैकड़ों अन्य आध्यात्मिक 'मास्टरों' की अपेक्षा आजकल श्रीअरविन्द का नाम कम सुन पाते हैं हमें तब भी हैरान नहीं होना चाहिए जब कुछ 'बहुचर्चित इतिहासकार आधुनिक भारत के निर्माताओं में पूज्य

गुरुदेव की गिनती नहीं करते। श्रीअरविन्द धूमकेतु नहीं हैं कि एक चिरंतन सूरज की भांति विश्व के आध्यात्मिक आकाश में सदैव देदीप्यमान हैं। भाव, भाषा, भंगिमा और विचार की संकीर्णता के बादल छँटते ही हम पूरी धरती को उनकी दिव्य चेतना में सराबोर होते देखेंगे। बुद्धि के दंभ से, तर्कों की बाजीगरी से और आंकड़ों की उबाऊ चालाकियों से चन्द महफिलों में तालियां बटोरी जा सकती हैं किन्तु देशकाल के प्रवाह की दिशा को बदला नहीं जा सकता, सत्य के सोम को सुखाया नहीं जा सकता। इसलिए बौद्धिक कुशलता से लिखा जाने वाला कोई भी इतिहास कम से कम श्रीअरविन्द के राजनैतिक और दार्शनिक अवदान का मूल्याकन नहीं कर सकता। क्योंकि वे एक ऐसे राष्ट्रीय नेता रहे हैं जिन्होंने भारत की आत्मा का साक्षात्कार किया है, जिन्होंने वासुदेव श्रीकृष्ण से प्रत्यक्ष मार्गदर्शन प्राप्त किया है। अनुभूति की भूमि पर उतरे बिना और समर्पण की सचाई के बिना उन पर कुछ भी न तो लिखा जा सकता है और न समझा जा सकता है। हमें यकीन है आने वाला भारत उनकी महाचेतना में स्वयं को धन्य करेगा।

"भाग्यशाली हैं वे जो भविष्य की ओर छलांग लगाते हैं।"

-श्रीमां

गीता और आदर्श समाज

डॉ सुरेशचंद्र शर्मा

प्रस्तावना

आज न केवल भारत अपितु सम्पूर्ण विश्व एक नूतन समाज व्यवस्था की ओर अग्रसर होता हुआ प्रतीत होता है । परंतु वह भावी समाज व्यवस्था क्या और कैसी होगी इस संबंध में कोई स्पष्ट अवधारणा सामने नहीं आ पायी है। आदर्श समाज के व्यवस्था के लिए अब तक अनेक वादों का प्रयोग किया जा चुका है। परंतु कोई ठोस परिणाम अभी भी सामने नहीं आया है। स्वतंत्रता के बाद से आज तक रामराज्य, समाजवाद, साम्यवाद , पूंजीवाद आदि अनेक सपने संजोए जा चुके हैं, परंतु देश और समाज की स्थिति संतोष जनक प्रतीत नहीं होती। राष्ट्रीय पुनरुत्थान के रूप में भी अनेक कार्यक्रम हाथ में लिए जा रहे हैं और सभी क्रियान्वयन की ओर अग्रसर भी है। उन सभी कार्यक्रमों का आदर्श प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक आधार पर नूतन समाज या विश्व का सर्जन करना है। इस संबंध में मनुस्मृति का एक श्लोक प्रायःउद्धृत किया जाता है-

एतद्देश प्रसुतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रंशिक्षेरन पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

इस श्लोक में भारत में शिक्षा ग्रहण करने के लिए विश्ववासियों को प्रेरित किया गया है। ऐसी स्थिति में सहज ही एक प्रश्न मन में उभरता है कि भगवद्गीता जो एक सार्वभौम ग्रंथ है, क्या हमारा कुछ मार्गदर्शन नहीं कर सकती? गीता में क्या कोई आदर्श समाज व्यवस्था देखी जा सकती है? इस आलेख के माध्यम से इसी जिज्ञास को शांत करने का एक विनम्र प्रयास किया जा रहा है।

गीता की ओर मुड़ें

निस्संदेह भगवद्गीता न तो समाज सुधार का ग्रंथ है और न यह हमारे समक्ष कोई आर्थिक कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। हां, खुले मन से यदि हम गीता का

अध्ययन करें तो पायेंगे कि यह एक समग्र जीवन ग्रंथ है जिससे मनुष्य व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवन के लिए आवश्यक प्रेरणा तथा सुनिश्चित सूत्र अवश्य प्राप्त किए जा सकते हैं। श्रद्धा युक्त होकर यदि हम गीता का अध्ययन मनन चिन्तन करें तो एक आदर्श समाज की परिकल्पना कर पाना असंभव नहीं है। निश्चित ही यह एक गूढ़ और गोपनीय आध्यात्मिक शास्त्र है। परंतु गीतोक्त आध्यात्मिकता जीवन के किसी भी पक्ष की उपेक्षा नहीं करती। आध्यात्मिकता से संबंधित सभी भ्रांतियों का निराकरण करती हुई गीता उसके समग्र रूप को प्रस्तुत करती है। ध्यान रहे गीतोक्त आध्यात्मिकता जागतिक जीवन का तिरस्कर नहीं करती अपितु जीवन को एक उच्च आलोक से परिपूर्ण कर देती है।

भौतिक और आध्यात्मिक जीवन

गीता के अनुसार भौतिक सफलता तथा आध्यात्मिक आलोक परस्पर परिपूरक होकर अभिन्न भाव से जुड़े हुए है। इस महान सत्य का दिग्दर्शन हमें गीता के अंतिम श्लोक (19/79) में इन शब्दों में प्राप्त होता है। देखा जाए तो इस एक श्लोक में ही पूर्ण आदर्श समाज की परिकल्पना प्रस्तुत कर दी गई है जो इस प्रकार है-

यत्र योगेश्वरः कृष्ण यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्री विजयोर्भूति ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

श्लोक के दो महत्वपूर्ण अंग है योगेश्वर कृष्ण तथा धनुर्धर पार्थ। ये दोनों एक साथ रहने चाहिए। तभी एक पूर्ण समाज अस्तित्व में आ सकता है। योगेश्वर कृष्ण से तात्पर्य है दिव्यदृष्टि सम्पन्न सारथी जिसके हाथों में घोड़ों की लगाम हो तथा जिसे यह ज्ञान हो कि रथ को किधर और कैसे ले जाना है तथा धनुर्धर पार्थ का तात्पर्य है उस तकनीकी तथा साधना से जिसका उपयोग आदर्श समाज के निर्माण हेतु किया जाना है। कृष्ण दृष्टि के प्रतीक तथा प्रतिनिधि है अर्जुन कार्य के प्रतीक एवम् प्रतिनिधि। जब ओजस्वी कर्म की प्रेरणा पूर्ण भागवत चेतना से युक्त हो तभी अभ्युदय और निःश्रेयस की अविभाज्य कल्पना साकार हो सकती है।

इस श्लोक में विजय, भूति (कल्याण) तथा नीति (न्याय) पर दिया गया बल यह दिखलाता है कि वांछित समृद्धि (श्री) धर्म पर आधारित होनी चाहिए। संक्षिप्त और साररूप में यही गीतोक्त आदर्श समाज की अवधारणा है। भगवद्गीता का यह ओजस्वी संदेश जब हमारे जीवन में प्रकट होगा तो हमारे आंसू आदर्श समाज के गठन के प्रयास में रूपांतरित हो जाएंगे। गीता का यह स्पष्ट आशय है कि हम अपने चारों नर्क का निर्माण करते हैं या स्वर्ग का यह हमारे स्वयं के ऊपर निभर है। गीतोक्त दृष्टि तथा कर्म प्रेरणा से युक्त लाखों लोग कार्य में जुट जायेंगे तो अवश्य ही सामाजिक रूपांतरण घटित होगा। आज आवश्यकता है कि हमारे देश की राजनीति, अर्थशास्त्र, कृषि, उद्योग, प्रशासन, न्याय, सभी एक ही लक्ष्य की ओर लग पड़े।

रहस्यात्मक यर्थाथ

गीता की दिव्य दृष्टि रहस्यात्मक होते हुए भी एक यर्थाथवादी दृष्टिकोण है। इसकी स्पष्ट झलक गीता के एकादश अध्याय में पाते हैं। भगवान के विश्वरूप को देखकर प्रारंभ में यद्यपि अर्जुन भयभीत और भ्रमित हो जाते हैं , उसका सच्चा अभिप्राय कुछ देर बाद प्रकट होता है। इस विश्व में सम्पूर्ण व्यक्त और अव्यक्त ब्रह्मांड जिसमें हमारी पृथ्वी भी थी रेगिस्तान के एक क्षुद्रकण जैसी प्रतीत होती है। इस दृश्य का संदेश यह है कि देश, द्वीप और जनता में विभाजित यह भौतिक अस्तित्व तुच्छ है, परंतु इसके साथ ही एक ही समग्र भगवान का अंश होने के कारण मनुष्य में अपार क्षमता भी समायी हुई है। वस्तुतः अंश-अंशी से अभिन्न होने के कारण दिव्य ही है। मानव जीवन और कार्यों का आधार यही होना चाहिए। यह ज्ञान हमारे मन में प्रबल आत्मविश्वास और आशावादिता का संचार कर देता है और इसके साथ ही यर्थाथ विनम्रता तथा निराभिमानता भी उत्पन्न करता है। समाज में एक सफल कार्यकर्ता की यही शर्त है। विश्वरूप दर्शन से एक और महत्वपूर्ण बात उभर कर आती है कि मनुष्य को भगवान के एक विनम्र यंत्र के रूप में कार्य करना चाहिए। सब प्रकार

के अहंकार और स्वार्थपरता से मुक्त होकर तथा दृष्टि से युक्त होकर जब मनुष्य भगवान के यंत्र के रूप में कार्य करता है तो उसके जीवन में आंतरिक रूपांतर तथा बाह्य उपलब्धि एक साथ आती है। आंतरिक रूपांतर के रूप में व्यक्ति में विश्रांति (Rest) तथा तत्परता (Readiness) आती है, जैसे एक यंत्र यंत्री के हाथ में होने पर पूरी तरह विश्राम की स्थिति में रहते हुए भी सदैव तत्पर भी रहता है। व्यक्ति की यह एक उच्च आध्यात्मिक अवस्था है। इसके साथ ही मनुष्य जब ईश्वर के साथ युक्त होकर कार्य करता है तो उसके जीवन में सफलता आना सुनिश्चित है, क्योंकि ईश्वर के संकल्प को कोई विफल नहीं कर सकता। संजय हमें आश्वासन देता है कि नीतिपरायण आध्यात्मिकता से उद्भाषित, भौतिक दृष्टि से समृद्धि तथा न्याय पर आधारित समाज व्यवस्था संकल्प का ही परिणाम है।

आध्यात्मिक और उदासीनता

आध्यात्मिक की निष्क्रियता तथा जागतिक उदासीनता समझने की भूल नहीं की जानी चाहिए। वास्तव में आध्यात्मिक का अभिप्राय है विजिगीषु जीवनवाद। यथार्थ में आध्यात्मिक दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति में सक्रिय नेतृत्व, बाधाओं को चीरकर आगे बढ़ने की दृढ़ इच्छाशक्ति और यहाँ तक कि साक्षात् मृत्यु का सामना करने की इच्छाशक्ति भी उत्पन्न हो जाती है। उपनिषद वर्णित यम और नचिकेता का संवाद, सावित्री और यमराज का संवाद नर और नारी दोनों में ही महान बल का संचार कर देता है। जीवन में कुछ महान उपलब्धि के लिए सर्वदा कटिबद्ध रहना ही यर्थाथ जीवन है। यदि सफल नहीं भी होते तो वीरतापूर्वक प्रयास करते मृत्यु का वरण तो करते ही हैं। मृत्यु जब अवश्यंभावी है तो फिर उच्च उद्देश्य के लिए क्यों न मरें? यही वह दर्शन है जिससे राष्ट्र में वीरों की उत्पत्ति होती है। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ऐसा ही जीवन देशवासियों के समक्ष रखना चाहते थे। सुख-सुविधामय जीवन जीना कोई जीवन नहीं है। समाज में आज भ्रष्टाचार तथा कदाचार भरा हुआ है। इसे दूर करने के लिए हम प्राणपण से चेष्टा करें, संघर्ष करें और अपने जीवन को सफल बनाएं यही गीता का समाज को संदेश है। भगवान कहते हैं-

तस्मात्वमुत्तिष्ठ यशो यलस्व
जित्वा शत्रून भुक्ष्वराज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव,
निमित्तमात्रं भव सव्य साचिन्॥

"दिव्य प्रेम तुम्हारा लक्ष्य हो।
विशुद्ध प्रेम तुम्हारा पथ हो।
अपने प्रेम के प्रति सदा सच्चे रहो और सभी कठिनाईयों पर विजय प्राप्त होगी।
मेरे प्यारे बच्चों को प्रेम और आशीर्वाद।"

-श्रीमां

धन

श्रीअरविंद
माताजी पृ 10-12

धन एक वैश्व शक्ति का दृश्यमान चिह्न है, और पृथ्वी पर अपने प्रकट्य में यह शक्ति प्राण और जड़ के क्षेत्रों में कार्य करती है और बाह्य जीवन की परिपूर्णता के लिये अपरिहार्य है। अपने मूल और अपनी सच्ची क्रिया में यह शक्ति भगवान् की है। परंतु भगवान् की अन्य शक्तियों की तरह यह शक्ति भी यहाँ हस्तांतरित कर दी गयी है और अधःप्रकृति के अज्ञान में अहं के उपयोग के लिये हड़प ली जा सकती या आसुरी प्रभावों द्वारा अधिकृत हो सकती और उनके उद्देश्य के लिये विकृत की जा सकती है। निस्सन्देह यह उन तीन शक्तियों में से है – आधिपत्य, धन और काम, जिनमें मानवीय अहं और असुर के लिये सबसे सबल आकर्षण है और जो प्रायः सर्वत्र अनधिकारियों के हाथों में पड़ जाती और उनके द्वारा अव्यवहत होती हैं। धन के आकांक्षी या भण्डारी धन के स्वामी न होकर प्रायः उसके दास ही हुआ करते हैं। असुरों ने लंबे समय से धन को अपने अधिकार में रखा है और उसे विकृत किया है, इससे उसपर एक ऐसी विकृतिकारिणी छाप पड़ गयी है जिससे बहुत कम लोग ही पूरे बच सकते हैं। इसी कारण अधिकतर आध्यात्मिक साधनमार्गों में पूरे आत्मसंयम, अनासक्ति और धन के सारे बंधनों और सारी वैयक्तिक तथा अहंकारयुक्त वित्तेषणा के त्याग पर जोर दिया जाता है। कुछ साधनमार्ग तो धन और संपदा पर निषेध ही लगा देते हैं और जीवन की दरिद्रता और रिक्तता को एकमात्र आध्यात्मिक अवस्था घोषित करते हैं। परंतु यह भूल है, इससे धनबल विरोधिनी शक्तियों के हाथ में रह जाता है। उसे उसके अधिकारी भगवान् के लिये पुनः जीत लेना और दिव्य जीवन के लिये दिव्य रूप में उसका उपयोग करना साधक के लिये अतिमानसिक मार्ग है।

धनबल और उससे मिलनेवाले साधनों और पदार्थों से तुम्हें संन्यासी की तरह मुंह नहीं मोड़ लेना चाहिये, न ही तुम्हें उनके लिये राजसिक आसक्ति या उनके भोग के आत्मसुख की दासवृत्ति ही पोसनी चाहिये। धन को केवल ऐसी शक्ति के रूप में देखो जिसे माँ के लिये पुनः जीत लेना और उनकी सेवा में नियोजित करना है।

सारा धन भगवान् का है. वह जिनके हाथ में है वे उसके ट्रस्टी हैं, मालिक नहीं। वह आज उनके पास है, कल और कहीं हो सकता है। सब कुछ इसपर निर्भर करता है कि जबतक वह उनके पास है, वे इस ट्रस्ट का पालन कैसे करते हैं, किस अन्तर्भाव से करते हैं, किस चेतना से उसका उपयोग करते हैं, किस उद्देश्य के लिये करते हैं।

अपने लिये धन के उपयोग में जो कुछ भी तुम्हारा है या तुम्हें मिलता है या तुम लाते हो उसे माँ का मानो तुम्हारी कोई भी मांग न हो, तुम्हे माँ से जो मिलता है उसे स्वीकार करो और उसे उन कामों में लगाओ जिनके लिये वह तुम्हें दिया गया हो। नितान्त निःस्वार्थ होओ, पूरे न्यायनिष्ठ बनो, सही- सही रहो, ब्योरों में सावधान रहो, अच्छे ट्रस्टी बनो; सदा यह मानो कि जिस धन का तुम उपयोग कर रहे हो वह माँ का है, तुम्हारा नहीं। फिर, जो कुछ उनके लिये मिले उसे उनके सामने श्रद्धा से रखो, अपने या और किसी के काम में न लगाओ।

धनी के धन के कारण उसके सामने सर न नवाओ, उसके आडम्बर, बल या प्रभाव की छाप अपने पर न पड़ने दो। जब तुम माँ के लिये मांगते हो तो तुम्हे यह अनुभव करना चाहिये कि वे ही तुम्हारे द्वारा अपनी वस्तु का अल्पांश चाह रही हैं और जिस व्यक्ति से तुम मांगते हो वह क्या उत्तर देता है उससे उसकी जांच होगी।

यदि तुम धनदोष से मुक्त हो और साथ ही संन्यासी की तरह तुम धन से भागते नहीं, तो भागवत कार्य के लिये धन जय करने की अधिक क्षमता तुम्हें मिलेगी। मन का समत्व, स्पृहा का अभाव और जो कुछ तुम्हारा है और

तुम्हें मिलता है उसका और तुम्हारी सारी अर्जनशक्ति का भगवती शक्ति को अर्पण इस मुक्ति के लक्षण हैं। धन और उसके उपयोग के संबंध में मन को कोई भी चंचलता, स्पृहा या कुण्ठा किसी न किसी अपूर्णता या बंधन का निश्चित चिह्न है।

इस मार्ग में आदर्श साधक वह है जो दरिद्रता की अवस्था में रहने की आवश्यकता होने पर वैसे ही रह सके और अभाव का कोई भी बोध उसे स्पर्श न करे, दिव्य चेतना को पूरी आंतरिक क्रीड़ा में बाधा न दे, और धनी की अवस्था में रहने की आवश्यकता होने पर वैसे ही रह सके और एक क्षण के लिये भी वासना में या अपने धन या उपयोगसामग्री की आसक्ति में या भोगवृत्ति की दासता में न जा पड़े, न ही दुर्बल होकर उन आदतों में बंध जाये जो धन रहने पर पड़ जाती है। भागवती इच्छा और भागवत आनंद ही उसके लिये सब कुछ हैं।

अतिमानसिक सृष्टि में धन की शक्ति को भगवती शक्ति के हाथों में वापस करना है; उसे, स्वयं भगवती माँ अपनी सृष्टि-दृष्टि से जैसा निर्णय करें उसी प्रकार, नूतन दिव्यीकृत प्राण और देह की सच्ची, सुंदर और सुसमंजस सज्जा और सुव्यवस्था के लिये व्यवहृत करना होगा। परंतु पहले उसे माँ के लिये फिर से जीत लाना होगा और इस विजय के लिये सबसे सबल वे होंगे जो अपनी प्रकृति के इस अंग में सबल, विशाल और अहंकार-निर्मुक्त हैं, कोई प्रत्याशा नहीं करते, अपने लिये कुछ बचाकर नहीं रखते, संकोच नहीं करते और परमा शक्ति के विशुद्ध वीर्यवान् माध्यम हैं।

पूर्णयोग

श्री नलिनीकान्त गुप्त

विज्ञान

मनुष्य साधारण अवस्था में यह अनुभव करता है मानो वह शरीर के, स्थूल आधार के अंदर है, इस अवस्था से ऊपर उठकर उसे यह अनुभव करना होगा मानो वह शरीर के बाहर, सिर के ऊपर है। ब्रह्मरंध्र से ऊपर एक स्तर या केंद्र है जो अतीन्द्रिय, अतिमन (Super mind) या विज्ञानमय लोक है। इसी स्तर में हमें अपनी मूल चेतना को प्रतिष्ठित करना होगा, इसी केन्द्र में हमें अपने 'अहं' बोध को ऊपर उठा ले जाना होगा। हर समय सभी भावों, विचारों और कर्मों में यह अत्यंत जाग्रत रूप से अनुभव करना होगा मानो हम शरीर के अंदर नहीं है, हम स्थित हैं शरीर के बाहर, सिर के ऊपर उस विज्ञानमय लोक में।

हम जिस समय अपने आधार के अंदर रहते हैं उस समय उसी चेतना के अनुसार हमारा आधार, हमारी वृत्ति, हमारी प्रकृति, हमारा स्वभाव, यहाँ तक कि बाहर का प्रतिष्ठान - समूह भी संगठित होता है - इन्हें एक प्रकार का विशेष रूप प्राप्त होता है, जो वर्तमान का, सर्वसाधारण का रूप है, जिसे स्वाभाविक अवस्था (natural state) कहा जा सकता है। योगी का लक्ष्य होता है इस स्वाभाविक अवस्था के स्थान में तुरीय अवस्था को स्थापित करना, अर्थात् शरीर के बाहर विज्ञान-लोक में पहुँचने पर चेतना का जो स्वरूप होता, उसके द्वारा आधार को, जीवन को, जगत् को नये रूप में गढ़ना, सजाना।

यह तुरीय या विज्ञानलोक ही आरोहण क्रम का अंत नहीं है, इसके भी ऊपर अनन्त –सत् –चित्-आनंद। जीव की परमा दृष्टि और गति है विज्ञानय लोक को भी पार कर आनंदमय, चिन्मय और सन्मय लोकों में प्रतिष्ठित होना। वास्तव में स्थूल आधार को परिधि

या सीमा बनाकर उसके भीतर जो हम जीव को स्थापित करते हैं, यह हमारी अज्ञानता है - पुरातन का, संस्कार का, अभ्यास का फल मात्र है। वास्तव में हमारा आधार केवल शरीर नहीं है, वह शरीर के परे भी है, वह अनंत रूप में फैला हुआ है। शरीर हमारे आधार का एक अंग है, स्थूलतम, निम्नतम स्तरमात्र है। आधार के ऊर्ध्व-से-ऊर्ध्व तर स्तर में, केन्द्र में अपने 'अहं' को, मूल चेतना को ले जाना ही उन्नति है, योगसाधना है।

परंतु मस्तिष्क की, स्थूल आधार की जो सीमा है, वह जीवन की क्रमोन्नति के लिए एक प्रकार का संकट स्थान है - इसको पार करते ही जीव एकदम एक नए प्रकार के राज्य में पहुँच जाता है। उस समय ऐसा मालूम होता है मानो सारी सृष्टि उलट गयी है - वर्तमान अवस्था में हम देखते हैं कि मनुष्य पैरों के बल ऊपर की ओर खड़ा है, उसकी वृत्ति, उसकी गति सब कुछ ऊर्द्धमुखी है। उसकी चेतना, उसकी ईषणा ऊपर की ओर अपनी शाखा-प्रशाखा फैलाए हुए है, परंतु उस समय हम देखते हैं 'ऊर्द्धोमूलोअवाक्शाखः' –सिर के ऊपर विज्ञानमय लोक में जब हम खड़े होते है तब हम देखते हैं यह विज्ञानमय लोक ही मूल है, उसी ने नीचे की ओर अपनी शाखा –प्रशाखा फैला दी है जिसका फल यह स्थूल आधार है। स्थूल आधार के स्थूल मिट्टी के सभी स्थूल खेल-विचार, भाव, कर्म-सब मानो ऊपर के केंन्द्र से निकल रहे हैं , मानों नीचे का यह सब कुछ उसी की छाया, प्रतिर्मूति, प्रतिध्वनि है। साधारण जाग्रत जीवन में हमारा व्यक्त आधार स्वाधीन, स्वतंत्र स्वप्रतिष्ठ सा प्रतीत होता है, परंतु उस समय हम यह देखते हैं कि यह तो केवल एक यंत्र, एक कठपुतली मात्र है, इस यंत्र को, इस कठपुतली को चलाने की चाभी तो उसी तुरीय में है। केवल इतना ही नहीं, उस समय हम यह भी देखते हैं कि इस आधार को, आधार के गठन को, संस्कार समूहों को जो हम कठिन, सुदृढ़, सनातन समझते थे, वह कितना बड़ा भ्रम था - वास्तव में आधार तो छायामय, वाष्पमय है, कितना नमनीय है, चाहे जैसा इसे गढ़ लिया जा सकता है।

यहां (विज्ञानमय लोक में) पहुंच जाने पर ऐसा मालूम होता है मानो एक ग्रंथि टूट गयी है, सत्ता मानो प्रसारित होकर असीम हो गयी है, हम मानो विश्व भर में छा गए हैं। उस समय न तो कोई भय रह जाता है, न संशय, न द्वन्द्व, न संघर्ष। उस समय हम अपनी वास्तविक सत्ता, अखंड ज्ञान, अमोघ शक्ति, अमिश्र आनंद पा जाते हैं, उस समय विश्व की समस्त वस्तुओं के साथ हमारा केवल पारस्परिक संबंध ही नहीं होता, प्रत्युत हम सबके साथ, प्रत्येक के साथ एकात्म हो जाते है। इसी का नाम है मुक्ति, जीवन मुक्ति।

हम कह चुके है कि विज्ञान के ऊपर है सच्चिदानंद। सिर के ऊपर से विज्ञान का क्षेत्र आरंभ होता है, वह क्रमशः अधिकाधिक उदार और वृहत् होता हुआ अंत में असीम आकाशमंडल की तरह सच्चिदानंद में, अंत में जाकर मिल जाता है। इस अंत में 'बहु' नहीं है, जो कुछ विशेष है वह सब यहां लुप्त हो गया है, यह अनिर्वचनीय है, 'एकम' 'अद्वैतम्' है। यहां पहुंच जाने पर जीव केवल शरीरातिरिक्त ही नहीं, बल्कि वह शरीरविनिर्मुक्त भी हो जाता है, कैवल्य-मुक्ति पा जाता है। उसी एक अद्वैत अनंत के एक स्तर या अवस्था विशेष को निर्वाण या लय कहते हैं।

यह असीम अनंत, सत्-चित्-आनंद ही सृष्टि का, मनुष्य का मूल उद्गमस्थान है - सबके ऊपर, सबके पीछे रह कर सबको धारण किए हुए है। परंतु यह अनंत चरम साम्य, निर्विकार, अरूप है। रूप का विकास, सृष्टि का नानात्व का आरंभ तब हुआ जब यह अनंत नीचे विज्ञानमय लोक में उतरा या आकर प्रकट हुआ, प्रकाश या सृष्टि मानो अनंत अवतरण है। आकार से अंतरिक्ष, अंतरिक्ष से मूर्द्धा, मूर्द्धा से हृदय, हृदय से नाभी, नाभी से उपस्थ – इस प्रकार एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र में , एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में क्रमशः प्रकटित होता आ रहा है सच्चिदानंद, विज्ञान, मन-बुद्धि, चित्, प्राण और देह। इस प्रकार अवरोहण पद्धति से सृष्टि उत्पन्न हुई है और फिर यह सृष्टि उसी एक पथ से, आरोहण पद्धति से, ऊपर की ओर जा रही है। सृष्टि का विर्वतन, मनुष्य की

उन्नति है सृष्टि के निगूढ़ क्रमको पुनः बाहर की ओर से उलट कर अंदर की ओर ले जाना।

परंतु आरोहण में दो बाधाएं हैं - अवश्य ही मनुष्य के लिए। हम कह चुके हैं कि मनुष्य का केंद्र , उसका प्रधान प्रतिष्ठा – क्षेत्र है मन-बुद्धि , मूर्द्धा- उसकी उन्नति या उसके ऊपर उठने का अर्थ है मन-बुद्धि को अतिक्रम करना, मूल चेतना को अपने अस्तित्व के, 'अहं' के केन्द्र को मूर्द्धा के ऊपर प्रतिष्ठित करना। अब, प्रथमतः मनुष्य जब शरीरातिरिक्त प्रतिष्ठान की प्रथम चेतना या अनुभव को प्राप्त करता है तब एकदम नए प्रकार की एक चीज अपने बृहत् के महत् के आलोक, आनंद और शक्ति से उसे अभिभूत कर लेती है; उस समय मनुष्य यह समझता है कि उसने इस बार पूर्ण सत्य को एक दम मूल केन्द्र को पा लिया है, इतने दिनों तक शरीर के अंदर जो उसे अनुभव हुए थे वे सब छाया मात्र थे, माया, कृत्रिम, भ्रमपूर्ण थे। शरीर से ऊपर उठ जाने पर वह शरीर को अस्वीकार कर देता है - शरीर के अंदर विद्यमान रहने के समय उसने जो एक धर्म, बंधन, श्रृखला पायी थी, शरीर से बाहर चले जाने पर उसे सबसे पहले इनमें केवल एक प्रकार का विरोध, असामंजस्य ही दिखायी पड़ता है। उस समय मनुष्य को आकाश के, अनंत के अरूप के, अक्षर ब्रह्म के अंदर भाग जाने का लोभ होता है। शरीर के अंदर जीव जितने दिन रहता है उतने दिन जैसे नीचे की ओर जाने की ही उसकी एक स्वाभाविक गति होती है, वैसे ही एक बार शरीर से बाहर चले जाने पर उससे विपरीत दिशा की ओर, एकदम चरम ऊपर की ओर उठ जाने की उसकी एक स्वाभाविक गति हो जाती है।

परंतु ऊपर का सत्य नीचे के सत्य से अलग नहीं है, अनंत आकाश पृथ्वी की ओर से मुंह फेर कर (convex) दूर नहीं चला गया है, वरन् वह पृथ्वी को घेरे हुए, पृथ्वी की ओर ही झुका हुआ (concave) है। इस अनंत का केंद्र (Focus) है विज्ञान, विज्ञान से ही मूल सृष्टि का प्रसार आरंभ हुआ है, अनंत जहां नीचे उतर कर विज्ञान के अंदर अनंत के साथ संयुक्त हुई है। शरीर के अंदर की जो लीला है, वह एकदम असत्य या भूल नहीं है। शरीर का चालक विज्ञान है, शरीर के धर्म –कर्म के जो मूल प्रकार (types) हैं, वे सब विज्ञान में हैं, परंतु जब तक जीव शरीर के अंदर रहता है, तब तक उसकी दृष्टि ठीक मूल स्थान से न आने के कारण उसके शरीर में शरीर के धर्म- कर्म में विकृति दिखायी देती है। परंतु शरीर से ऊपर चले जाने पर हम देखेंगे कि हमारी दृष्टि सहज और सरल हो गयी है, शरीर के अंतर के धर्म-कर्म सहज और सरल होते जा रहे हैं।

विज्ञानमय लोक का सत्य सहज, सरल है, मन-प्राण- अन्नमय लोक का सत्य उसी विज्ञानमय लोक के सत्य का विकृत, कुटिल प्रतिरूप है। विज्ञान अनंत को, सच्चिदानंद की साक्षात् अभिव्यक्ति है, इसलिए जैसे अनंत, सच्चिदानंद सत्य है , वैसे ही विज्ञान भी सत्य है। परंतु सच्चिदानंदमय जीव ने विज्ञान को पार कर ज्यों ही शरीर में प्रवेश किया त्योंही जीव के सामने एक पर्दा पड़ गया और इसीलिए उसी समय गौण प्रकाश का खेल- अज्ञान का, अर्द्ध ज्ञान का खेल आरंभ हो गया। जीव का काम है अपने को उस विज्ञानमय लोक में ले जाकर, जाग्रत रखकर शरीर धर्म को, मन-बुद्धि , चित-प्राण और देह को रूपांतरित करना। अनन्त के, सच्चिदानंद के, कैवल्य मुक्ति के अंदर इन सबका निर्वाण नहीं करना होगा, क्योंकि इनकी सार्थकता निर्वाण में नहीं है, बल्कि विज्ञान के अंदर जो सच्चिदानंद , जो अनंत जाग्रत, सज्ञान, साकार हुआ है, उस सत्यज्ञान, रूप और जीवन के द्वारा नीचे के समस्त आधार को, शरीर प्रतिष्ठान को गठित करना होगा।

प्रार्थना और ध्यान

हे प्रभु, हे अचिन्त्य तेजपुञ्ज, वर दे कि तेरा सौन्दर्य पृथ्वी पर फैल जाय, तेरा प्रेम सब हृदयों मे प्रज्ज्वलित हो उठे, तेरी शान्ति सब पर छा जाय |

हे प्रभु, मेरे हृदय से एक गहरा, गम्भीर, प्रसन्नतापूर्ण और सूक्ष्म गीत उठता है। पता नहीं कि यह मुझसे उठकर तेरी ओर जा रहा है अथवा तुझसे उठकर मेरी ओर आ रहा है अथवा तू, मैं और समस्त संसार यह अद्भुत गीत बने हुए हैं जिसका मुझे सब ज्ञान हो रहा है ..... निश्चय ही अब न तू है, ना मैं हूँ और ना कोई अलग संसार है। केवल एक बृहत् अनन्त एक तथा उदात्त समस्वरता जिसमें सब कुछ समाविष्ट है और जिसका एक दिन सबको ज्ञान हो जायगा। यह समस्वरता उस असीम प्रेम की समस्वरता है जो सुब दुःख तथा अन्धकार को जीत लेगा।

मैं अब इस प्रेम के नियम, तेरे ही नियम, के अनुसार अधिकाधिक सर्वांगीण रूप में जीना चाहती हूँ। इसके प्रति मैं बिना संकोच के अपने-आपको समर्पित करती हूँ।

और मेरी सत्ता अनिर्वचनीय शान्ति में आनंद मना रही है।

पवित्र और निष्काम प्रेम, तेरा वह प्रेम जिसे हम अनुभव तथा व्यक्त कर सकते हैं, तेरी खोज में लगे हृदयों को खोजने के लिए एकमात्र कुञ्जी है। जो बौद्धिक मार्ग का अनुसरण करते हैं वे ऐसी धारणा बना सकते हैं जो अत्यन्त उच्च तथा सत्य हो; वे समझ सकते हैं कि सत्य जीवन अथवा वह जीवन जो तेरे संग एक हो चुका है, क्या है। परन्तु उन्हें उसका ज्ञान नहीं; उन्हें इस जीवन का आन्तरिक अनुभव नाममात्र को भी नहीं होता और वे तेरे साथ हर प्रकार के सम्पर्क से अनभिज्ञ होते हैं। जो लोग तुझे बौद्धिक रूप में जानते हैं और त्रिक्यात्मक दृष्टि से अपनी मानसिक रचना में, जिसे वो सबसे अच्छा मानते हैं, उनका परिवर्तन सबसे अधिक कठिन होता है | उनमें चेतना जागृत करने में बहुत कठिनाई होती है, जो किसी और सद्भाव वाले व्यक्ति में नहीं होती। केवल प्रेम ही यह चमत्कार साधित कर सकता है, क्योंकि प्रेम सब किवाड़ खोल देता है, सब किवाड़ें भेद डालता है, सब बाधाएँ पार कर जाता है। तनिक-सा सच्चा प्रेम अच्छे-से-अच्छे उपदेश से कहीं अधिक काम करता है |

हे प्रभु ! मेरे अंदर इसी प्रेम का पवित्र फूल प्रस्फुटित कर दे, जिससे जो भी हमारे समीप आयें उन सबको यह सुगन्धित कर दे और वह सुगन्ध उन्हें पवित्र बना दे।

इसी प्रेम में है शान्ति और आनन्द, सारी शक्ति और सम्पूर्ण उपलब्धि का स्त्रोत है। यह अचूक बोध है, परम सान्त्वनाप्रदाता है; यह विजेता है, सर्वोच्च शिक्षक है |

हे प्रभु, मेरे प्रिय स्वामी! तू, जिसकी मैं मौन भाव में पूजा करती हूँ तथा जिसके प्रति मैं पूर्णतया समर्पित हूँ, और जो मेरे जीवन का शासक है, तू मेरे हृदय में अपने पवित्र प्रेम की ज्योति जगा दे, ताकि यह तीव्र ज्वाला बनकर जल उठे और सब अपूर्णताओं को भस्म कर दे; अहंकर की मृत लकड़ी को तथा अज्ञान के काले कोयले सुखदायी ताप और चमकते प्रकाश में परिवर्तित कर दे।

हे नाथ! मैं ऐसी भक्ति के साथ, जो एक साथ प्रसन्तापूर्ण तथा गम्भीर है, तेरे अभिमुख होती हूँ और याचना करती हूँ कि :

तेरा प्रेम प्रकट हो,
तेरा राज्य स्थापित हो,
तेरी शक्ति संसार पर शासन करे।

- श्रीमाँ

ब्रह्मजाया या ब्रह्म की वधू

एक वैदिक कथा

"आज मैं तुमलोगों को एक कहानी सुनाऊंगा, ऐसी कहानी जो बच्चे, बूढ़े, सभी के लिए है, बहुत ही पुरानी, प्राचीन कहानी है, सचमुच यह वेदों में से है।"1

किसी समय की बात है, हां मैं उस समय की बात कह रहा हूं जब देश और काल नहीं थे। देश और काल के अस्तित्व से पहले की है यह कहानी, जब केवल एक ही परम सत्ता, अनाम सत्ता का अस्तित्व था जिन्हें ब्रह्म कहा जाता है! हम मनुष्यों के लिए वे परम अस्तित्व हैं, प्रभु हैं, भगवान् हैं और मनुष्य उन्हें जिस नाम से पुकारना चाहे ये वह सब हैं। वे सूर्य देवता भी हैं, जाज्वल्यमान सत्य, सभी प्रकाशों के प्रकाश हैं। हां, तो बात यह हुई कि एक बार ब्रह्म ने स्वयं को निहारा और वे यह देख कर आश्चर्यचकित हो उठे कि उनकी उज्ज्वलता, उनका प्रकाश कम हो रहा है, उनका रंग काला पड़ता जा रहा है। ब्रह्म कुछ चकराये, उलझन में पड़ गये। क्या होने वाला है? उसी समय उन्होंने अपने साथी-देवताओं का स्मरण किया, तुरन्त सब देवगण वहां उपस्थित हो गये। उनमें सबसे आगे वरुण थे। वरुण का एक अर्थ होता है, जिसकी चेतना और दृष्टि विस्तृत हो। वे दूर, बहुत दूर, अनदेखे भविष्य में देख सकते हैं। उन्होंने कारण जान लिया और ब्रह्म से बोले "भगवन्, आपकी शक्ति चली गयी है।" ब्रह्म और उनकी शक्ति ब्रह्मजाया एकरूप थे वे दोनों हमेशा एक ही सत्ता में मिले हुए थे। फिर वरुण बोले- "ब्रह्म की वधू ब्रह्म से अलग हो गयी है।" अब सवाल यह था कि आखिर वे ब्रह्म से बिछुड़ कर, उन्हें अन्धकार की इस अवस्था में छोड़ कर, भला कहां चली गयीं? सब उन्हें खोजने में लग गये। अन्त में, हमेशा की तरह, वरुण ने ही अपनी दूर दृष्टि से जाना कि ब्रह्मशक्ति, भागवत शक्ति, दूर, बहुत दूर, पृथ्वी के गर्भ में चली गयी हैं और वे उस भौतिक तत्त्व में पूरी तरह समा गयी हैं। वे 'जड़-भौतिक बन गयीं, भौतिक की तरह अचेतन और अन्धकारमय हो गयीं। देवताओं ने देखा कि पृथ्वी पर जाकर ब्रह्मशक्ति हर साधारण प्राणी, हर साधारण वस्तु के जैसी बन गयी हैं। उन्होंने आपस में सलाह-मशविरा किया और इस निश्चय पर पहुंचे कि हमें किसी-न-किसी तरह ब्रह्मशक्ति को जाग्रत् करना होगा, उन्हें अपने बारे में सचेतन करना होगा और ब्रह्म के पास वापस ले आना होगा जिससे ब्रह्म फिर से तादात्म्य पा लें। अतः, पहले सोम देवता उनके समीप गये, सोम का अर्थ चन्द्रमा या 'आनन्द' होता है। देवगण बोले- "आनन्द और आह्लाद ने ही ब्रह्म और शक्ति का मिलन करवाया था, अतः अब उनके पुनर्मिलन के लिए सोम को ही पथप्रदर्शक बना कर हमें शक्ति के पास ले चलना चाहिये।" सभी देवता शक्ति के पास पहुंचे और अनुरोध कर उन्हें लौटने को राजी कर लिया और शक्ति अपने घर की ओर चल पड़ीं। यहां हम पार्वती का स्मरण कर सकते हैं जब वे अपनी भौतिक मां के गृह से कैलास पर्वत की ओर अपने स्वामी के पास चली थीं।

वेदों में इसी तरह की एक और कहानी पायी जाती है, जब अग्नि- देवता ढूंढने पर भी न मिल रहे थे। जैसा कि तुम लोग जानते ही हो, यह एक विशेष देवता हैं जो यज्ञ के अधिष्ठाता है। अग्नि के बिना यज्ञ में आहुति नहीं दी जा सकती, वे पुरोहित हैं। यज्ञ के इस अनुष्ठान के अधिष्ठाता। मैं तुमलोगों को इतना बतलाता चलूं कि इस अनुष्ठान का अर्थ है चेतना का विकास। अग्नि के प्रज्वलित होने के पहले लौ होती है - जो अभीप्सा की इच्छा के जागने का प्रतीक है। तो कहानी इस प्रकार है - यज्ञ शुरू होने वाला था और तभी अचानक यह देखा गया कि अग्नि-देवता, यज्ञ के पुरोहित ही नहीं हैं। सब जगह उनकी ढूंढ़ मची, लेकिन उनका कहीं कोई ठौर-ठिकाना ही न था, वे लुप्त हो गये थे हमेशा की तरह एक बार फिर सभी देवता मिले। "आखिर अग्नि

देवता जा कहां सकते हैं? इस वक्त उनका यहां रहना अनिवार्य है, यही उनका धर्म है। ऐसे समय भला वे कहां चले गये?" चारों तरफ उनके लिए धूम मच गयी, और अन्त में जानते हो वे कहां छिपे मिले? पानी के अन्दर। देवता उनके पास पहुंचे और हाथ जोड़ कर बोले, "हे देव! आप यहां क्यों छिपे बैठे हैं? बाहर आइये। आपका कार्य स्थगित हो गया है।" अग्नि देवता उत्तर में बोले, "तुम लोग चाहे कुछ भी कहो, मैं यहीं रहूंगा, यहां से न हिलूंगा।" "लेकिन भला क्यों?" "वह बहुत कठिन कार्य है। मुझसे पहले कइयों ने इस कार्य को करने का बीड़ा उठाया था, लेकिन आज तक कोई सफल न हो पाया। आंशिक रूप से भले ही हुआ हो, पूरी तरह से कोई भी सफलता प्राप्त न कर सका। मैं अपने कन्धों पर असफलता का भार नहीं ढोना चाहता, यह एक व्यर्थ प्रयास है।" देवताओं ने बहुत अनुनय- विनय की और बार-बार बोले, "नहीं देव, यह आप ही का कार्य है, आप पूरी सफलता पायेंगे, विश्वास रखिये।" और अन्त में देवता अग्नि देव को शान्त करने और उन्हें वापस लाने में सफल हुए।

जैसा कि मैंने मैंने अभी-अभी कहा, यज्ञ का अर्थ है चेतना का विकास - जब व्यक्ति साधारण भौतिक स्तर से निकल कर, अन्धकार से उबर कर, उच्च प्रकाश में उठता है। यही विकास है, और इसे ही यज्ञ कहते हैं; क्योंकि तब तुम निम्न वस्तुओं को, स्वभाव के निम्न स्तरों को छोड़ कर उच्च सत्यों को प्राप्त करते हो अग्नि तुम्हारे हृदय की शक्ति है, हृदय की यह अभीप्सा है जिसमें तुम साधारण मानव से अधिक ऊपर उठना चाहते हो सचमुच यह एक तपस्या है, ऊपर उठने के लिए तुम्हें कठिन प्रयास करना पड़ता है क्योंकि निचली वस्तुओं का आकर्षण इतना तीव्र होता है कि ऊपर उठने के लिए सचमुच तपस्या करनी पड़ती है चीज बहुत कठिन है और यही कारण था कि अग्नि देव इस बीड़े को उठाना नहीं चाहते थे क्योंकि मनुष्य - साधारण मनुष्य - ने साथ देने से इन्कार कर दिया था। लेकिन जैसा कि मैंने कहा, अन्त में अग्नि ने कार्य पूरा करना स्वीकार किया और कहानी ने सुखद मोड़ ले लिया। यहां हम अग्नि-देव को जल के अन्दर छिपा पाते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि जल किसका प्रतीक है? जल प्राणिक शक्तियों का, जीवनी शक्ति का प्रतीक है। वास्तव में यह भी उसी 'सचेतन शक्ति का एक रूप है जिस परम चेतना का रूप अग्नि है, लेकिन जल के ऊपर भौतिक कवच है, एक परदा पड़ा है और उसे वहां से मुक्त करके ऊपर की ओर उठाना है।

अब हम अपनी पहली कहानी पर आयें देवता ब्रह्म की वधू, ब्रह्मजाया को साथ ले चले। लेकिन सब बातों के पहले वही प्रश्न मन में उठता है ब्रह्मजाया ब्रह्म को अकेले छोड़ कर चली क्यों गयी थीं? जिनके साथ कभी उनका पूर्ण ऐक्य था उनसे ही वे अलग क्यों हो गयीं? उपनिषद के अनुसार, वह कहानी यूं है: ब्रह्म बहुत समय से शाश्वत काल से एक, अकेले ही थे एक सत्ता', 'एक सत्य' जिसे विभाजित नहीं किया जा सकता, लेकिन एक बार उन्हें भान हुआ कि ये अकेले हैं; इसके पहले उन्होंने इस विषय में कभी कुछ सोचा तक नहीं था। उन्हें इसका भान तक न था कि वे अकेले हैं, कि केवल उनका अस्तित्व था। लेकिन अब उन्होंने यह सोचना आरम्भ कर दिया कि वे अकेले हैं और जहां एक बार सोचना शुरू किया कि उसका अन्त नहीं। अन्त में उन्होंने सोचा- "भला अकेला कोई कैसे सुखी रह सकता है? सुखी रहने के लिए दो का होना जरूरी है- एकाकी न रमते।" अतः, ब्रह्म-परम प्रभु ने अपने आपको दो में विभक्त कर लिया एक नर और दूसरी नारी एक चेतना और दूसरी शक्ति, एक ब्रह्म और दूसरी ब्रह्मशक्ति, एक अग्नि और दूसरी लौ। इससे पहले भी ये भाग उनमें थे, लेकिन थे अभिन्न, एकरूप और जुड़े हुए। लेकिन जैसा कि मैंने कहा, जब इन्द्र का यह विचार आया तो ब्रह्म अपनी शक्ति से अलग हो गये। ब्रह्म ने स्वयं को शक्ति से पृथक कर दिया, उसे अपने अन्दर से निकाल दिया, शक्ति स्वयं ही बाहर निकल आयी और दोनों सचमुच

पृथक् हो गये, ये मानों एक-दूसरे के आमने-सामने खड़े थे। तुमलोगों को याद होगा-मेरा मतलब बड़ों को यहां आश्रम के थियेटर में श्रीमां के द्वारा जिस नाटक का मञ्चन किया गया था- "पुरुष और शक्ति- "He and She" उसमें किस तरह यह दर्शाया गया था कि पहले वे एक थे और किस तरह वे अलग हो गये, और कैसे ऐक्य और पुनरेक्य की लीला चली तो अब वे अलग हो गये थे और दोनों एक-दूसरे से दूर होते गये, दूर होते गये और वह दूरी इतनी बढ़ गयी कि शक्ति बिलकुल दूसरे छोर पर जा पहुंची ब्रह्म ऊपर परम चेतना थे और यह एकदम नीचे जाकर पूर्ण रूप से अन्धकारमय जड़-भौतिक बन गयी। ब्रह्म भी दूसरी ओर अधिकाधिक खिंचते चले गये और जैसा कि बौद्ध कहते हैं, शून्य की ओर बढ़ने लगे।

लेकिन शक्ति अपने प्रभु से अधिक समय के लिए अलग नहीं रह सकती। उसे वापस प्रभु के निकट जाना ही पड़ेगा। मानव जीवन की भी यही कहानी है। उसे निम्न प्रकृति से उठ कर आध्यात्मिक प्रकृति को प्राप्त करना है। वेदों में कहा गया है कि शक्ति को राह दिखाने के लिए देवता एक के बाद एक आये। सबसे पहले आये सोम - 'आनन्द' अर्थात्, आनन्द ने शक्ति की हत्तन्त्री को झंकृत किया जिससे वह जाग उठे, और चूंकि आनन्द ही ब्रह्म और शक्ति के प्रथम मिलन का सूत्र था अतः उनके पुनर्मिलन का प्रेरक भी वही बना उसके बाद आये अग्नि।अग्नि का अर्थ है -ऊपर उठने के लिए अभीप्सा का प्रकाश। अग्नि ने सबसे पहले शक्ति को एक मन्त्र से दीक्षित किया। यह साधारण मनुष्य को दी जाने वाली दीक्षा की भांति है जब वह आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करता है। यह एक गुरु के पास जाता है और गुरु उसे एक ऐसा मन्त्र देते हैं जो उसकी चेतना को जाग्रत कर देता है। अग्नि ने मन्त्र के रूप में परम शब्द "ब्रह्म" दिया। शक्ति को इसी परम शब्द पर एकाग्रचित्त होना था जब तक कि वह उसके साथ तादात्म्य न पा ले और उसने वैसा ही किया। जब शक्ति ने अपने परम प्रभु को पहचान लिया और एक बार फिर उन्हें पूरी तरह से स्वीकार कर लिया तो अग्नि ने उसे आगे बढ़ने को कहा। अब उसे दूसरी अवस्था में जाना था। अग्नि ने कहा-" अपनी सत्ता को विस्तृत करो, अपनी चेतना को विस्तृत करो जब तक यह अनुभव न हो कि तुम स्वयं ब्रह्म हो, उनके साथ एक होओ। अब तुम्हें स्वयं को सभी सत्ताओं के साथ, सभी देवताओं और प्राणियों के साथ एक होना होगा और स्वयं को वैश्व बनाना होगा।" अतः, अब ब्रह्मजाया ने व्यक्तिगत सिद्धि से निकल कर वैश्व सिद्धि में प्रवेश किया जहां उन्होंने सभी प्राणियों में अपने प्रभु को पाया। उन्होंने सभी देवताओं के प्रासादों में प्रवेश किया।

जीवन की भी यही कहानी है। जैसा कि तुम लोग जानते हो, परमप्रभु की ओर उठने के लिए सत्ता को तीन सोपानों से गुजरना पड़ता है। सबसे पहले तुम्हारी साधारण व्यक्तिगत सत्ता होती है जो अमुक नाम रूप में बंधी होती है, फिर उस खोल में से बाहर निकल कर तुम सभी सत्ताओं के साथ, सारी मानवजाति के साथ, यहां तक कि सभी वस्तुओं के साथ तादात्म्य स्थापित करते हो। तुम सृष्टि के समान विशाल बन जाते हो। लेकिन यह चरमावस्था नहीं है। तुम्हें इससे भी परे परात्पर में जाना होगा। वहां तुम्हें परम प्रभु की प्राप्ति होगी, अपनी सत्ता के परम 'सत्य' का दर्शन भी तुम्हें वहीं होगा। हां, तो ब्रह्म की वधू भी वैश्व सिद्धि के परे अपने प्रभु के पास, अपनी सम्पूर्ण सत्ता में पहुंच गयीं। और जैसे- जैसे वे ऊपर उठती गयीं, अपने सभी निम्न स्तरों को उतार, पवित्रतर और अधिकाधिक प्रकाशमय स्तरों को अपनाती गयी और अन्त में अपने मौलिक रूप में आ गयी और सभी देवताओं को अपनी शरण में लिये हुए अपने परम प्रभु में लीन हो गयीं। अन्ततः सभी प्रसन्न हो उठे।

कहा जाता है कि यह बिछोह और पुनर्मिलन धरती के लिए अधिक पूर्णता लाया। क्योंकि इस बिछोह के बिना धरती पर पूर्णता का स्थान न होता। धरती जैसी थी वैसी ही बनी रहती। ब्रह्म की वधू ब्रह्म से बिछुड़ कर धरती में

उतर कर जड़ भौतिक के साथ एक हो गयी और इसी कारण उस जड़-भौतिक में परम प्रभु के सत्य के प्रवेश की सम्भावना पैदा हुई।

परम प्रभु की वधू जड़ भौतिक में उतर आयी और उसके साथ एक हो गयी। उन्होंने भौतिक प्रकृति को उसके सम्पूर्ण अन्धकार भार के साथ अपने ऊपर ले लिया और, जैसा कि वेदों में कहा गया है. उन्होने "भीमजाया" का रूप धारण कर लिया-वस्तुतः वे महाकाली बन गयीं। पहले ये "सौम्यजाया" थीं। क्योंकि प्रगति होनी थी इसलिए ऊपर उठते समय अब उन्होंने इतनी शक्ति प्राप्त कर ली कि अवचेतना का अधिक-से-अधिक भार अपने कन्धों पर उठा सकें और क्रमशः उसे रूपान्तरित कर सकें। अन्तिम सिद्धि होने पर सभी देवता और सम्पूर्ण मानवजाति उस 'प्रकाश'- तले जुटेंगी और ब्रह्म और उनकी वधू के मिलन के आनन्द में हिस्सा लेंगी।

यह एक ऐसी कहानी है, एक ऐसा नाटक है जो अभी चल रहा है, अगर हम कुछ सचेतन होकर देखें तो पायेंगे कि यह कोई काल्पनिक कहानी नहीं है बल्कि घटना है। यह एक ऐसी क्रिया है जो किसी अन्य जगत् के किसी सूक्ष्मतर क्षेत्र में चल रही है जैसा कि वेद कहते हैं, यह नाटक उन "स्वर्गों" में दोहराया जाता है ताकि यह धरती पर अधिकाधिक ठोस, अधिकाधिक सत्य बनते-बनते अन्ततः मूर्त रूप ले सके।

इस वैश्व नाटक में एक अद्वितीय चीज ध्यान देने योग्य है। अगर अवरोहण हुआ है तो निश्चित रूप से आरोहण भी उसके साथ-साथ चला आ रहा है। ऊपरी तौर से लगता है कि शक्ति अकेली उतरी है, लेकिन वह मूल रूप में अकेली नहीं हो सकती। उसकी पृष्ठभूमि में उसके परम प्रभु का होना आवश्यक है। अर्थात् इस कठोरतम जड़ भौतिक के अन्धकार में शक्ति के साथ-साथ ब्रह्म भी हैं। उनके प्रकाश का छोटा सा अंश उसमें समा गया है। इसका अर्थ है कि एक ऊर्ध्वगामी प्रेरणा, एक अभीप्सा हमेशा यहां रहती ही है और जब शक्ति पूर्ण अचेतना में पहुंचती है तो प्रतिक्षेपण की गति होती है। यह निर्जीव प्रकृति का विकास की ओर, ऊपर उठने की ओर जागना है। और यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रकृति के विकास के साथ-साथ परम प्रभु के स्तर भी खुलते जाते हैं, अर्थात्, प्रभु स्वयं को अधिकाधिक प्रकट करते जाते हैं। परम प्रभु और शक्ति कभी एक-दूसरे से अलग नहीं हो सकते, वे हमेशा एक ही थे, यह ऊपरी अलगाव केवल एक खेल है, अधिक ऊंचे मिलन के लिए लीला है।

शायद आज इस युग में हम चरम सिद्धि के बहुत नजदीक हैं, शायद उसकी देहली पर खड़े हैं जिस सिद्धि के बारे में वेदों ने कहा है कि उस अन्धकारमय, ठोस, जड़ भौतिक मां वेदों की भीमजाया का रूपान्तरण हो जायेगा और उस रूपान्तरण में मानवजाति का भी हिस्सा होगा। जैसा कि मैंने कहा, अभी तक यह चीज सूक्ष्मतर जगतों में, सूक्ष्मतर रूपों और सूक्ष्मतर शक्तियों के द्वारा घट रही है इसका ठोस भौतिक रूप अब तक नहीं उतरा है, शायद क्षितिज के पीछे उगने-उगने को है। हम सभी किसी-न किसी रूप में देर सवेर इस पूर्णता में भाग अवश्य लेंगे।

- नलिनीकांत गुप्ता

1श्रीमां ने एक बार कहा था कि ब्रह्माण्ड को समझाने के लिए अगर लोग कहानियों का माध्यम अपनायें तो ये कहानियां बच्चों की भी कहानियां बन सकती हैं। प्रत्येक इन कहानियों को उसके अन्दर बैठे उस बालक को सुना सकता है जो अन्यथा हमसे बहुत कटा-कटा रहता है। और उनका कहना है कि स्वयं को बहिर्मुख या अन्तर्मुख करके हम ब्रह्माण्ड की इस कहानी को कुछ हद तक जी सकते हैं। यह हमें चीजों को समझने, उन पर प्रभुत्व प्राप्त करने की कला प्रदान करती है, संसार के "क्यों" को समझाती है। लेकिन, हमारे लिए यह सावधानी बरतनी बहुत जरूरी है कि इस कथा को हम सिद्धान्त या मत नहीं बना लें। इस प्रकार की कहानियों

के पीछे एक गुह्य और आध्यात्मिक अर्थ होता है, इन्हें उसी रूप में समझना चाहिये। अगर व्यक्ति प्रतीकों के पीछे के सत्य को देख सके तो वह सब कुछ समझ जाता है।-: -सं.

माता की शक्ति

केवल माता की शक्ति, कोई

मानवी प्रयास और तपस्या नहीं,

अच्छादन को छिन्न और

आवरण को विदीर्ण कर पात्र को
सत्य- स्वरूप में गढ़ सकती हैं और

इस अन्धकार, असत्य, मृत्यु और

क्लेश के जगत में सत्य, प्रकाश,

दिव्य जीवन और अमृत्व का

आनन्द ले आ सकती हैं |

-श्रीअरविन्द

मातृ-शक्ति के दिव्य स्पर्श से

इस धरा पर
नव मानव ढल रहा –
पूर्ण मानव होगा जो,
सिद्ध पुरुष ! नर के
पशु तन का प्रथम बार
मानवीकरण या
दिव्यीकरण जहाँ सम्भव है !

-सुमित्रानन्दन 'पन्त'

योग का मार्ग

श्रीअरविन्द

योग का अर्थ है ऐक्य और योग का समस्त उद्देश्य है मानव अन्तरात्मा का परमसत्ता के साथ, मानवजाति की वर्तमान प्रकृति का शाश्वत, परम या दिव्य प्रकृति के साथ ऐक्य।

ऐक्य जितना अधिक बड़ा होगा योग भी उतना ही बड़ा होगा, ऐक्य जितना पूर्ण होगा, योग भी उतना ही पूर्ण होगा।

परम सत्ता के बारे में विभिन्न कल्पनाएं हैं और हर कल्पना के साथ मेल खाता हुआ एक योग सम्प्रदाय है जिसके अलग विचार और जिसकी अलग साधना है। परन्तु ये पूर्ण नहीं आंशिक पद्धतियाँ हैं या यूं कहें कि वे अपने–आपमें तो पूर्ण हैं परन्तु सारी मानव सत्ता और प्रकृति को अपने अन्दर नहीं समेटतीं। उनमें से अधिक जीवन से दूर ले जाती हैं और केवल उन्हीं थोड़े से लोगों के लिए उपयोगी हैं जो मानव जीवन से दूर जाने के लिए प्रवृत्त हैं और सत्ता की किसी अन्य अवस्था के आनन्द की खोज में हैं। सर्व सामान्य मानवजाति के लिए वस्तुत: इस प्रकार के योग का कोई सच्चा संदेश नहीं हैं। पूर्णयोग वह होगा जो जगत् के अन्दर भगवान को स्वीकार करे, सभी सत्ताओं के साथ ऐक्य स्वीकारे, और मानवजाति के साथ एकात्मता को स्वीकारे। जो जीवन और अस्तित्व को भागवत चेतना से भर दे और न केवल व्यष्टिगत मनुष्य का उत्थान ही करे बल्कि, मानवजाति को समग्र पूर्णता की ओर ले जाये।

वर्तमान मानवीय समस्याएं और श्रीअरविंद का गीता- प्रबंध

ज्ञानचंद्र

एक बार एक पाश्चात्य शिष्य ने 'मां' से पूछा –श्रीमां मेरा एक अमेरिकी मित्र श्रीअरविन्द का अध्ययन प्रारंभ करना चाहता है, तो किस ग्रंथ से वह प्रारंभ करे। क्या उसे 'गीता –प्रबंध' (एसेज ऑन गीता) देना उचित होगा?

"अरे! हां"- श्रीमां ने प्रसन्न् होकर कहा। "गीता-प्रबंध ! वह तो स्वर्ण की खान है। श्रीअरविन्द की विरल, विज्ञानपूर्ण व्याख्या के बाद वह एक अद्वितीय और अपूर्व महत्त्व का ग्रंथ हो गया है जिसमें न केवल मानव के वर्तमान की समस्त व्याधियों, जटिलताओं के ही समाधान हैं बल्कि भविष्यकाल की समस्याओं के भी निदान प्रस्तुत किए जा चुके हैं।

अलीपुर जेल में श्रीअरविन्द ने प्रमुख रूप से गीतोक्त समर्पण – साधना व गीता-वर्णित योग वृत्ति का ही अभ्यास-तप किया था। श्रीकृष्ण से एक तादात्म्य अलीपूर जेल में ही उन्हें प्राप्त हो गया था। वहीं भगवान कृष्ण ने उन्हें उपनिषदों व वेदों के नूतन व गहन अर्थ और मंतव्य प्रदान किये थे जिसका ज़िक्र उन्होंने चन्द्रनगर के मोतीलाल राय को लिखे पत्रो में किया है।

अपनी 'थॉट एवं एफोरिज्म' – विचारमाला व सूत्रावली' पुस्तक में उन्होंने घोषणा की है कि 'कुरुक्षेत्र का व्याख्यान' अभी भी मानवता को बचाएगा।

मनुष्य के दैनिक, नैमित्तिक जीवन की प्रत्यक्ष समस्याएं मात्र नहीं अपितु मानव की आंतरिक जटिलाएं, देह प्राण, मन व चेतना की असीम और गहन समस्याएं त्वरित गति से दूर कर सकने की सामर्थ्य, सफल अहर्ता गीता में है बशर्ते कि उसके कथनों को सही में, परिप्रेक्ष्य और समुचित संदर्भो में, समीचीन रूप से मनस्थ व हृदयस्थ कर लिया जाय और यह कार्य श्रीअरविन्द कृत गीता –प्रबंध से निःसंशय व सुनिश्चित रूप से किया जा सकता है।

यों तो गीता की अनेकानेक टीकाएं, समीक्षाएं , व्याख्याएं और उपलब्ध हैं, परंतु अपवाद रहित रूप से प्रायः सभी मानसिक और बौद्धिक हैं। अनुभूति और साक्षात्कार की शक्ति से हीन। प्रायः गीता व्याख्याकार संस्कृत के ज्ञान से भी शून्य हैं। अनेकों टीकाएं पढ़कर उसमें कल्पना व स्वविचारों का जामन देकर ही लिख रहे हैं। अनुभूति और साक्षात्कार की सामर्थ्य-दृष्टि उनमें नहीं मिलती। परंतु योगेश्वर, पूर्णयोग के अधीश्वर व श्री मातृतत्त्व रूप अनंत श्री विद्या के साक्षात्कृत श्रीअरविन्द का गीता-प्रबंध तो ऐसा ग्रंथ है कि मात्र इसी एक ग्रंथ के सतत, अविरल और समर्पित अध्यास, अभ्यास से संपूर्ण साधना और उपासक उपक्रम किए जा सकते हैं और सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

'रिकार्ड आफ योग' की श्रीअरविन्द की डायरी प्रमाण है कि उच्चतम से उच्चतम सिद्धि वे 1912 तक प्राप्त कर चुके थे । 1912 की सिद्धि दशा के पश्चात श्रीमां के आगमन पर 1914 में प्रारंभ किया गया गीता-प्रबंध एक महासिद्ध द्वारा लेखनी-प्रवाहित सिद्ध –शास्त्र ही है। अत्यंत दिव्य चमत्कारों व विचित्रताओं से परिपूर्ण ग्रंथ है श्रीअरविन्द का गीता-प्रबंध।

यहां 1926 के 24 दिसंबर की सिद्धि का उल्लेख भी अनुपयुक्त न होगा। इस सुख्यात सिद्धि –दिवस पर तो श्री कृष्ण की अधिमानसिक चेतना का श्रीअरविन्द पर पूर्णावतरण हुआ था। यह तो अन्य प्रकार का अतिरहस्यात्मक प्रसंग है।

तलवार को युद्ध-क्रीड़ा में आनन्द आता है, बाण को सन सनाहट में और उड़ान में प्रमोद मिलता है, पृथ्वी को आकाश में चकराने वाले वेग से घूमने में, सूर्य को सतत गति शील राजसी भव्यता में आनन्द मिलता है। हे आत्मचेतन यन्त्र, तू भी अपने निश्चित कार्य में आनन्द ले ।

-श्रीअरविन्द

श्रीअरविन्द का प्रतीक

सुरेश चंद्र त्यागी

श्री अरविन्द के प्रतीक की व्याख्या करते हुए श्रीमाँ ने 4 अप्रैल 1958 को लिखा था-

"अवरोही त्रिभुज सत्, चित्, आनन्द का प्रतीक है। आरोही त्रिभुज प्राण, प्रकाश और प्रेम के रूप में भौतिक तत्त्व के ऊर्ध्वाकांक्षी उत्तर का प्रतीक है।

दोनों का संधिस्थान-केन्द्रीय वर्गाकार-परिपूर्ण अभिव्यक्ति है जिसके केन्द्र में है परम सत्ता का अवतार-कमल।

"वर्गाकार के भीतर का जल विविधता का, सर्जन का प्रतीक है।"

श्री अरविन्द के इस प्रतीक जैसा ही प्रतीक 'कॉस्मिक आन्दोलन' द्वारा 1902 में प्रयुक्त किया गया था। पेरिस में इस आन्दोलन के प्रमुख थे मैक्स थिओं (Max The on)। गुह्य विद्या के आचार्य थिओं इस विद्या के क्षेत्र में श्रीमाँ के दिग्दर्शक थे। इस विद्या को सीखने के लिए श्रीमाँ अलजीरिया गई थीं। कॉस्मिक आन्दोलन के मुखपत्र कॉस्मिक रिव्यू (Review Cosmique) के प्रकाशन में श्री माँ का महत्वपूर्ण योगदान था। इस रिव्यू के प्रत्येक अंक के मुख पृष्ठ पर उपर्युक्त प्रतीक छपता था।

निष्कर्ष यह कि हम श्री अरविन्द के जिस प्रतीक से परिचित हैं, उससे श्रीमाँ 1914 में श्री अरविन्द से भेंट से पहले से ही परिचित थीं। श्रीमाँ और श्री अरविन्द की प्रथम भेंट के बारे में एक कहानी प्रचलित रही है। कहा यह जाता है कि जब 1910 में पॉल रिचर्ड भारत के लिये प्रस्थान कर रहे थे तो श्रीमाँ ने उन्हें एक प्रतीक- Solomon's Seal-यह कहते हुए दिया था कि जो व्यक्ति इस प्रतीक की व्याख्या कर देगा, वह ही उनका गुरू होगा, जिसकी खोज में हम हैं। नलिनीकांत गुप्त ने अपने संस्मरण में लिखा है कि श्रीअरविन्द ने हमें बतलाया था कि फ्रेंच महिला पेरिस से आ रही हैं जो महान विदुषी हैं। उन फ्रेंच महिला का संकेत जिन महान् आत्मा की ओर था, वह श्री अरविन्द ही थे।

ए.बी. पुराणी की पुस्तक 'लाइन ऑफ श्री अरविन्द' के प्रथम संस्करण में पुराणी ने उपर्युक्त घटना के बारे में लिखा तो श्रीमाँ ने उसमें संशोधन किया। पुराणी ने लिखा था-"श्री माँ ने रिचर्ड को कुछ प्रश्न दिये थे जिनका समाधान भारत में किसी आध्यात्मिक व्यक्ति को करना था।.... उन प्रश्नों में एक प्रश्न 'कमल' के प्रतीकार्थ के बारे में था। "श्रीमाँ ने पुराणी की पांडुलिपि पर लिखा- "यह सही नहीं है। मैंने रिचर्ड को समाधान हेतु कोई प्रश्न नहीं दिया था।" "दूसरे प्रश्न के बारे में श्रीमाँ ने लिखा- "मैंने नहीं । संभवत: स्वयं रिचर्ड ने।" श्रीमाँ के संशोधन प्रतीक से सम्बन्धित कहानी की सत्यता को स्पष्ट करते हैं।

कुछ भी हो, 1920 में श्रीमाँ के स्थायी रूप से भारत आने पर षट्कोणीय तारक (जिसके भीतर जल और कमल है) श्री अरविन्द का प्रतीक बन गया। यह स्पष्टत: नहीं कहा जा सकता कि इस प्रतीक का डिजाइन कब तैयार हुआ लेकिन इसका सर्वप्रथम प्रयोग 1933 में आर्य पब्लिशिंग हाऊस, कलकत्ता से प्रकाशित श्री अरविन्द की पुस्तक The Riddle of this World के मुख पृष्ठ पर किया गया था। उस समय प्रतीक का डिजाइन ठीक वैसा नहीं था, जैसा आज है । 1962 में इस डिजाइन में संशोधन किया गया। 27 अक्टूबर 1962 को श्री माँ के निकट के शिष्य पवित्र ने एक डिजाइन को अंतिम रूप दिया जिसका अनुमोदन श्रीमाँ ने किया और लिखा- "यह श्रीअरविन्द का सही प्रतीक है।" उसके बाद भी प्रतीक को संतुलित बनाने के लिए सूक्ष्म संशोधन हुए और वह रूप बना जो आज प्रचलित है।

सुनो वत्स, सुनो...

- श्रीमातृवाणी' खण्ड ६, पृ. ३९१

सुनो अगर तुम हर रोज सोने से पहले केवल एक छोटा-सा मिनट निकाल कर इस तरह से, और इस छोटे-से मिनट में अपनी क्षमता के अनुसार पूरी एकाग्रता के साथ यह याचना करो कि तुम दिव्य शक्ति के बारे में सचेतन हो सको, बस, इसी तरह, इससे बढ़ कर कुछ नहीं; और सवेरे जागने पर, अपना दिन शुरू करने से पहले अगर तुम यही करो, मिनट भर निकाल कर जितनी एकाग्रता कर सकते हो करो, और यह मांगों कि तुम दिव्य शक्ति के बारे में सचेतन हो सको, तो तुम देखोगे कि कुछ समय के बाद ऐसा ही होगा। और कुछ नहीं, बस, ये ही छोटी-छोटी बातें जो कुछ भी नहीं हैं, और जिनमें समय भी नहीं लगता।

एक दिन यह होगा। हां, तुम्हें उसे एकाग्रता, तीव्रता और सच्चाई के साथ करना चाहिये; यानी यह नहीं होना चाहिये कि जब तुम यह मांग रहे हो, उसी समय तुम्हारा कोई दूसरा हिस्सा अपने आपसे कह रहा हो, "आखिर इसका कोई महत्त्व नहीं है।"... तुम्हें एक मिनट के लिए पूरी तरह वहां होना चाहिये। निश्चय ही, अगर तुम मिनटों को बढ़ाते जाओ, तो काम और भी जल्दी होगा। लेकिन जैसा कि मैं पहले भी कह चुकी हूं, अगर तुम इस योग्य हो कि पिछले क्षण की अभीप्सा का अगले ही क्षण विरोध न करो, तो काम ज्यादा आसान हो जाता है; अगर ऐसा न कर पाओ, तो वह सच्चाई को दूर धकेल देता है।

युवाओं से : श्रीमां के प्रेम के साथ

श्रीमातृवाणी, खण्ड १२ पृ. १९८-१९९

देखो, वत्स, दुर्भाग्य की बात यह है कि तुम अपने-आपमें बहुत ज्यादा रमे रहते हो। तुम्हारी उम्र में, मैं पूरी तरह से अपनी पढ़ाई में लगी रहती थी - अपने-आपको जानकारी देने, सीखने, समझने और जानने में लगी रहती थी। इसी में मुझे रस आता था, यही मेरी 'धुन' थी। मेरे माँ, जो मुझसे और मेरे भाई से बहुत प्रेम करती थी, हमें कभी अनमना असन्तुष्ट या आलसी न होने देती थी। अगर हम उनसे किसी चीज की शिकायत करने जाते और यह कहते कि हम असन्तुष्ट हैं तो वे हमारे ऊपर हंसती, हमें डांटती और हमसे कहती थी "यह क्या मूर्खता है? हास्यास्पद न बनो, जाओ और अपना काम करो, अपनी अच्छी या बुरी मनोदशा की परवाह न करो। यह बिलकुल रुचिकर नहीं है।"

मेरी मां की बात बिलकुल ठीक थी और मैं अनुशासन तथा काम करते हुए एकाग्रता और आत्म विस्मृति सिखाने के लिए हमेशा उनकी बहुत कृतज्ञ रही हूँ।

मैंने तुम्हें यह इसलिए बतलाया है क्योंकि तुम जिस चिन्ता की बात करते हो वह इसलिए आती है कि तुम अपने आपमें बहुत ज्यादा रमे रहत हो। तुम्हारे लिए बहुत ज्यादा अच्छा होगा कि तुम जो कर रहे हो (चित्रकला या संगीत) उसमें मन लगाओ, अपने मन को विकसित करो जो अभी तक बहुत अशिक्षित है, और ज्ञान के वे तत्त्व सीखने में लगाओ जिनका जानना अनिवार्य है, यदि तुम अज्ञानी और असंस्कृत नहीं रहना चाहते। अगर तुम नियमित रूप से दिन में आठ-नौ घण्टे काम करो तो तुम्हें भूख लगेगी। तुम अच्छी तरह से खाओगे और शान्ति से सोओगे और तुम्हारे पास यह सोचने के लिए समय न होगा कि तुम अच्छी मनोदशा में हो या बुरी।

मैं ये सब बातें तुम्हें अपने पूरे प्यार के साथ बता रही हूं, और आशा करती हूं कि तुम इन्हें समझ लोगे।

तुम्हारी माँ जो तुमसे प्यार करती है।

अपना आध्यात्मिक वातावरण स्वयं बनाओ

श्री मातृ वाणी खण्ड ६, पृ ३४९-५०

अपने विचारों पर संयम रख कर, उन्हें ऐकान्तिक रूप से साधना की ओर मोड़ कर, अपनी क्रियाओं पर संयम करके और उन्हें ऐकान्तिक रूप से साधना की ओर मोड़ कर, समस्त कामनाओं और व्यर्थ के बाह्य साधारण क्रिया-कलापों का उन्मूलन करके, अधिक तीव्र आन्तरिक जीवन जीकर, सामान्य चीजों से, सामान्य विचारों से, सामान्य प्रतिक्रियाओं से सामान्य क्रियाओं से अपने आपको अलग करके तुम अपने चारों और एक प्रकार का वातावरण बना सकते हो।

उदाहरण के लिए, कोई भी ऊट-पटांग चीज पढ़ने, गप्पें लगाने और कुछ भी करने की जगह अगर तुम केवल वही पढ़ो जो तुम्हें मार्ग का अनुसरण करने में सहायता दे, अगर तुम केवल उसी के समर्थन में कार्य करो जो तुम्हें भागवत उपलब्धि की ओर ले जाये, अगर तुम अपने अन्दर से कामनाओं और बाहर की ओर मुड़े हुए आवेगों का उन्मूलन कर सको, अगर तुम अपने मनोमय पुरुष को शान्त कर लो, अपनी प्राणिक सत्ता को शान्त कर लो, अगर तुम बाहर से आने वाले सुझावों की ओर से अपने-आपको बन्द कर लो और अपने चारों तरफ के लोगों की क्रिया से अपने- आपको अस्पृष्ट बना सको, तो तुम एक ऐसा आध्यात्मिक वातावरण बना लोगे कि उसे कुछ भी न छू सकेगा, वह इसके बाद परिस्थितियों पर जरा भी निर्भर न होगा। तुम कहां, किसके साथ या किन परिस्थितियों में रहते हो इसका जरा भी असर न होगा, क्योंकि तुम अपने ही आध्यात्मिक वातावरण से घिरे होगे। और उसे पाने का तरीका यह है : अपना ध्यान पूरी तरह आध्यात्मिक जीवन की ओर मोड़ना, केवल वही पढ़ना जो आध्यात्मिक जीवन में लाभ पहुंचा सके, केवल वही करना जो तुम्हें आध्यात्मिक जीवन की ओर ले जाये आदि-आदि। तब तुम अपना निजी वातावरण पैदा कर लेते हो। लेकिन स्वभावतः, अगर तुम सभी दरवाजे खोल दो, लोग जो कुछ कहें वह सब सुनो, इसकी राय और उसकी प्रेरणा का अनुसरण करो और बाहरी चीजों के लिए कामनाओं से भरे रहो, तो तुम अपने लिए आध्यात्मिक वातावरण नहीं बना सकते। तुम्हारा वातावरण साधारण सा होगा, जैसा औरों का होता है।

जब हम उतावली में हों तो अच्छे से अच्छा कैसे कर सकते हैं?

-श्रीमातृवाणी, खण्ड ४, पृ. १३९-४१

जब कोई काम करता है और भरसक अच्छे-से-अच्छा करना चाहता है तो उसे समय की आवश्यकता होती है। परन्तु साधारण तौर पर हमारे पास बहुत अधिक समय नहीं होता, हमें हमेशा उतावली रहती है। जब हम उतावली में हों तो हम भरसक अच्छे-से-अच्छा कैसे कर सकते हैं?

यह बहुत ही रोचक विषय है और मैं इसके बारे में पूरे ब्योरे के साथ एक दिन तुमलोगों से कहना चाहती थी। सामान्य तौर पर जब मनुष्य जल्दबाजी में होते हैं तो जो काम उन्हें करना होता है उसे वे पूर्णता के साथ नहीं करते अथवा जो कुछ वे करते हैं उसे बुरे रूप में करते हैं। परन्तु एक तीसरा तरीका भी है, वह है अपनी एकाग्रता को तीव्र बना देना। यदि तुम ऐसा करो तो तुम आधा समय, यहां तक कि बहुत थोड़े समय में से भी, बचा लोगे। एक बहुत सामान्य उदाहरण ही ले लो स्नान करके कपड़े पहन लेना; इसमें जो समय लगता है वह हर मनुष्य के लिए अलग होता है, होता है न? परन्तु हम मान लें कि समय खोये बिना और जल्दबाजी किये बिना सब कुछ कर लेने के लिए आधे घण्टे की आवश्यकता है। अब, यदि तुम उतावली में हो तो दो बातों में से एक

बात होती है तुम उतनी अच्छी तरह स्नान नहीं करते अथवा ठीक तरह से कपड़े नहीं पहनते। परन्तु एक दूसरा तरीका है अपने ध्यान को और अपनी शक्ति को एकाग्र कर लेना, जो कुछ कर रहे हो बस उसी की बात सोचो, अन्य किसी चीज की नहीं, बहुत अधिक गति मत करो, अत्यन्त समुचित ढंग से बिलकुल ठीक गति करो, और (यह जीवन में उतारा हुआ अनुभव है, मैं निश्चिति के साथ यह कह सकती हूं) तुम महज एकाग्रता की घनता के द्वारा, जिसे पहले आध घण्टे में करते थे, पन्द्रह मिनट में कर लोगे, और उतनी ही अच्छी तरह, कभी-कभी उससे भी अधिक अच्छी तरह कर लोगे, न तो कोई चीज भूलोगे और न कोई चीज छोड़ोगे ही।
और यह उन लोगों के लिए सबसे अच्छा उत्तर है जो कहते हैं, "ओह यदि कोई अच्छी तरह कार्य करना चाहता है तो उसे समय अवश्य मिलना चाहिये।" यह सच नहीं है क्योंकि तुम चाहे जो कुछ करो - पढ़ना, खेलना, कार्य - बस, केवल एक ही समाधान है एकाग्र होने की अपनी शक्ति को बढ़ाना और जब तुम इस एकाग्रता को हासिल कर लेते हो तो वह फिर थकाने वाली नहीं होती। स्वभावतः ही, प्रारम्भ में, इसमें एक प्रकार का तनाव पैदा होता है, पर जब तुम इसके अभ्यस्त हो जाते हो तो तनाव कम हो जाता है, और एक समय ऐसा आता है जब तुम्हें इस प्रकार एकाग्र न होने के कारण, अपने-आपको छितरा देने के कारण, सभी प्रकार की चीजों का अपने को शिकार बन जाने देने के कारण तथा जो कुछ करना है उस पर एकाग्र न होने के कारण थकावट आती है। मनुष्य एकाग्रता की शक्ति के द्वारा और अधिक अच्छी तरह तथा अधिक शीघ्रता से कार्य पूरा करने में सफल हो सकता है। इस प्रकार तुम कर्म का उपयोग विकास के साधन के रूप में कर सकते हो अन्यथा तुम्हारी यह अस्पष्ट धारणा बनी रहेगी कि कर्म "निष्काम भाव" से सम्पन्न करना चाहिये, परन्तु इसमें एक महान् खतरा है, क्योंकि मनुष्य बड़ी तेजी से उदासीनता को ही निष्काम भाव मानने की भूल कर बैठता है।

एकाग्रता क्या है?

- 'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ५-६

इसका अर्थ है, अपनी चेतना के बिखरे हुए सभी भागों को एक ही बिन्दु पर, एक ही भाव या विचार पर वापस ले आना। जो लोग पूर्ण मनोयोग की स्थिति प्राप्त करने में समर्थ होते हैं वे जो कार्य हाथ में लेते हैं उसी में सफल होते हैं; वे हमेशा तेज प्रगति करते हैं और इस प्रकार की एकाग्रता ठीक मांसपेशी की भांति विकसित की जा सकती है; इसके लिए मनुष्य प्रशिक्षण के विभिन्न पथों, विभिन्न पद्धतियों का अनुसरण कर सकता है। उदाहरण के लिए, तुम जानते हो कि अत्यन्त दयनीय दुर्बल व्यक्ति भी नियमित अभ्यास के द्वारा किसी भी अन्य व्यक्ति के समान बलशाली हो सकता है। मनुष्य का संकल्प ऐसा नहीं होना चाहिये जो मोमबत्ती की तरह झिलमिला कर बुझ जाये।

संकल्प शक्ति को, एकाग्रता की शक्ति को अवश्य बढ़ाना चाहिये, बस, प्रश्न है पद्धति का, नियमित अभ्यास का ।

यदि तुम चाहो तो कर सकते हो। परन्तु संकल्प को कमजोर बनाने के लिए यह विचार नहीं उठना चाहिये कि "भला इससे लाभ क्या?" यह भावना कि मनुष्य एक विशिष्ट स्वभाव लेकर पैदा होता है और उस विषय में कुछ भी नहीं कर सकता, एक मूर्खतापूर्ण बात है।

स्वर्णिम ज्योति

श्री अरविन्द CWSA खण्ड २, पृ. ६०

तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे मस्तिष्क में हुआ अवतरण
और मन के धुंधले कक्ष हो गये सूर्यायित
प्रज्ञा के तान्त्रिक तल के लिए एक उत्तर प्रसन्न,
एक शान्त प्रदीपन और एक प्रज्वलन।

तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे कण्ठ में हुआ अवतरण,
और मेरी सम्पूर्ण वाणी है अब एक दिव्य धुन,
मेरा अकेला स्वर तेरा स्तुति-गान;
अमर्त्य की मदिरा में उन्मत्त हैं मेरे वचन।

तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे हृदय में हुआ अवतरण
मेरे जीवन को तेरी शाश्वतता से करता आक्रान्त;
अब यह बन गया है तुझसे अधिष्ठित एक देवालय
और इसके सब भावावेगों का केवल तू एक लक्ष्य।

तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे पैरों में हुआ अवतरण :
मेरी धरती है अब तेरी लीलाभूमि और तेरा आयतन।

आश्रम गतिविधियाँ

9 मई 2023 –

"GIVES" कार्यक्रम में "ब्लाक रॉक" एवं युवा प्रशिक्षार्थियों ने बढ़ईगीरी, खाना पकाने, टाई और डाई, बीज पैकिंग, जैविक चाय की पत्तियां तोड़ने और दीया बनाने के लिए 'कौशल विकास कार्यशाला' में प्रशिक्षण प्राप्त किया।

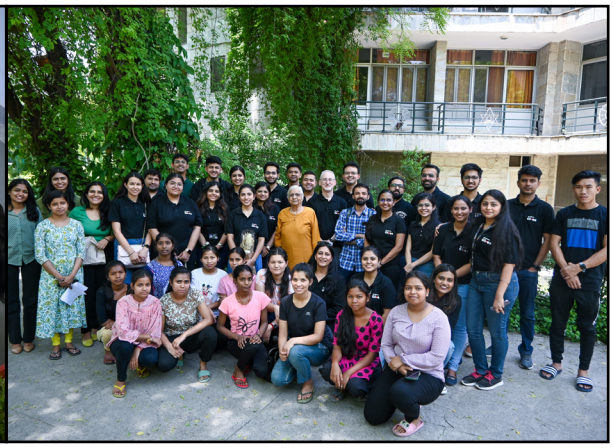

15 मई 2023 –

आश्रम के ध्यान कक्ष में श्री विकास कुमार झा द्वारा गायन

29 मई 2023 –

आश्रम के हिमालय पर वन निवास, नैनीताल केंद्र में रेलिक्स स्थापना दिवस पर विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं ध्यान का आयोजन हुआ।

7 जून 2023 -

आश्रम के हिमालय पर मधुवान, रामगड़ केंद्र में रेलिक्स स्थापना दिवस पर आश्रम में सुश्री लिंथोइंगांबिचनु ने संगीतमय गायन प्रस्तुत किया।

21 जून 2023 -

अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस पर 'वसुधौव कुटुंबकम के लिए योग' कार्यक्रम के अंतर्गत आश्रम वासियों एवं प्रशिक्षार्थियों ने 'आसन और प्राणायाम' किया।

मई जून 2023

रतनलाल फ़ाउंडेशन एवं उद्यान केंद्र ने इन दो महीनों में आश्रम प्रांगण में 5 अलग-अलग शिविरों का आयोजन किया जिनमें 161 प्रशिक्षार्थियों ने भाग लिया।
इसी दौरान आश्रम के, हिमालयन केंद्र – नैनीताल एवं रामगड़, पर कई शिविरों का आयोजन हुआ जिनमें युवाओं ने ट्रेक्किंग, खेल कूद, योग आदि में भाग लिया।